भारत के क्रान्तिकारी

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2019
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक :

दो शब्द

भारतीय इतिहास के पन्ने पलटने से प्रतीत होता हे कि इस देश पर अनेक विदेशी आक्रमणकारियों जैसे यूनानी, हूण, शक, मुगल, फ्रांसीसी, डच, पुर्तगाली एवं अंग्रेज़ आये और यहाँ के शासक बन गये। मुगल और अंग्रेज़ शासकों ने यहाँ की जनता पर अनेक अत्याचार किये जिनको सुनकर ही व्यक्ति की रूह कांप जाती है। अंग्रेज़ों के विरुद्ध आज़ादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते लगभग 7,32,000 भारतीय शहीद हो गये। अन्ततः 755 वर्षों की दासता के पश्चात् 15.8.1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ।

दासता के इस नये पंजे एवं शिकंजे से यदि कोई बचा सकता है वह है आज़ादी का साहित्य। आज़ादी का इतिहास, आज़ादी के लिये मर मिटने वाले वीरों और वीरांगनाओं की जीवन गाथाएं। वस्तुतः आज़ादी का साहित्य ही आज के लोगों को राष्ट्रीयता, देशभक्ति, स्वतंत्रता, स्वराज्य जैसे शब्दों का सही अर्थ समझा सकता है और यही आज के भटके युवकों के मन को सही मार्ग पर लाकर प्रेरणास्रोत बन सकता है। यही उनके सोये हुए हृदयों को झकझकोर सकता है और उनकी रगों में जमा हुए खून का संचार कर सकता है। अतः आज के परिपेक्ष्य में यह परमावश्यक है कि इस प्रकार के साहित्य का अत्यधिक प्रचार-प्रसार हो।

वैसे तो अगणित शहीदों ने अपना बलिदान देकर हमारे देश को स्वतंत्र करवाया है। परन्तु इन में से जिन वीरों की प्रमुख भूमिका रही थी, वे हैं—मंगल पांडे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोप, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराज, श्यामजी कृष्ण वर्मा, मदनलाल ढींगरा, लाला हरदयाल, करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, ऊधम सिंह, राम प्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्लाखां, भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, सुभाष चन्द्र बोस, सरदार बल्लभभाई पटेल आदि। स्वतंत्रता संग्राम में अहम् भूमिका महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की थी, जिसके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं। वास्तव में आज़ादी की नींव रखने वाले महर्षि दयानन्द ही थे। सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर देखें।

वस्तुतः ये सभी राष्ट्रभक्त थे जिन्होंने राष्ट्र के लिये अपने प्राणों की आहुति दे दी। राष्ट्रप्रेम के प्रसंग में अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का

संदेश स्वतः ही याद आ जाता है–

अमेरिकावासियो ! तुम यह मत सोचो कि अमेरिका तुम्हारे लिये क्या कर रहा है ? अपितु यह सोचो कि तुम अमेरिका के लिए क्या कर रहे हो ? यही शुद्ध राष्ट्रप्रेम है ।

आइये हम यह भी विचारें कि हम अपने राष्ट्र भारतवर्ष के लिए क्या कर सकते हैं ? वस्तुतः मैंने प्रस्तुत पुस्तक को सच्ची लगन और कड़ी मेहनत से लिखा है । इन विषयों का एक खूबसूरत गुलदस्ता मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ । अब आप इस ऐतिहासिक क्रान्ति ''भारत के क्रान्तिकारी'' पुस्तक के पन्नों को पलटिये और उनके जीवन गाथाओं को पढ़ कर अपने जीवन को सार्थक बनायें ।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान, रोशनलाल अग्रवाल, नरेश बंसल, जयकिशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों में से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं । वस्तुतः बोलना सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन । जैसेकि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वद एकं मा लिख

सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो । क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह जाये तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जाती है । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ व अपूर्ण है । अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं पाठकगण से क्षमा चाहूँगा । त्रुटि को भविष्य में सुधारा जायेगा, यदि वह उचित व सार्थक होगी ।

धर्म पाल कपूर

दिनांक : 6.3.2019

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

वर्तमान में देश के छात्र-छात्राओं को पढ़ाया जा रहा है कि बिना खून की बूंद बहाये गांधीजी आज़ादी लाये। बड़े ही दुर्भाग्य का विषय है कि देश के उन वीर शहीद जवानों का कही वर्णन नहीं जो फाँसी के फंदों को चूम कर देश की आज़ादी के लिये अपने प्राणों की आहूति दे गये। कितने जेलों में अंग्रेज़ों की यातनायें सहते-सहते दम तोड़ गये। श्री धर्मपाल कपूर जी 'भारत के क्रान्तिकारी' नामक पुस्तक लिख कर उन शहीदों के बलिदानों को लोगों तक पहुँचाने का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय कार्य किया है, अक्सर लोग शहीदों के विषय में जानते तक नहीं। 755 वर्ष तक मुसलमानों व अंग्रेजों का शासन रहा। देश पराधीनता की अग्नि में झुलस रहा था। मुगलों ने देश की जनता पर बड़े जुल्म ढाये। सन् 712 ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण करके विजय प्राप्त कर वहाँ के मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिद बनाई, पुजारी, भिक्षु और जो मनुष्य युद्ध करने के योग्य थे, उन सबका क़त्लेआम किया। यह तीन दिन तक चलता रहा। हिन्दू औरतों को बन्दी बनाया गया, उनके ऊपर अत्याचार किये गये।

सन् 1018 में गजनी के महमूद ने मथुरा पर हमला किया, 1025 ई. में महमूद ने सोमनाथ का मन्दिर लूटा। वह पुजारियों को बन्दी बना कर गजनी ले गया और वहाँ ले जाकर अढ़ाई-अढ़ाई रुपये में बेचा। अमानवीय कार्य करवाये। फिरोज शाह तुग़लक (1351-1388) स्वयं लिखता है कि हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराना एक पवित्र कार्य है।

चितौड़ पर अधिकार करते ही अकबर ने उसे पूरी तरह विध्वंस करने का आदेश दिया। 1,30,000 निहत्थे हिन्दू बच्चे, बूढ़े, युवा, स्त्री-पुरुष गाजर मूली की तरह काट दिये गये। जयपुर के राजा भारमल ने अपनी रियासत को अकबर के हाथों तहस-नहस होने से बचाने के लिये अपनी पुत्री जोधाबाई को जयपुर से दूर सांभर नामक स्थान पर अपमानित होकर सौंपा था। जोधाबाई का विवाह कोई प्रसन्नता का विषय नहीं था। देश की जनता

पर अत्याचार हो रहे थे । देश की जनता ग़रीबी, धर्म-परिवर्तन आदि जबरन किया जा रहा था । कितने हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया ।

इसके बाद अंग्रेज़ों ने देश को गुलाम बनाया और कुछ कार्य अपने देश हित में किये, जैसे, सड़कें, पुल, रेल लाईनें बिछाना । यहाँ पर जो कार्य हुआ उसके पीछे अंग्रेज़ों की बड़ी भारी योजना थी । कच्चा माल यहाँ से सस्ते दामों पर इंग्लैंड ले जाकर नव निर्मित माल इस देश में अधिक मूल्यों पर बेचते थे । दूसरे स्कूल, कॉलेजों का खोलना, इसके पीछे भी अंग्रेज़ों की बड़ी योजना काम कर रही थी कि अंग्रेज़ी भाषा के लागू होने पर इस देश की राष्ट्र भाषा हिन्दी, संस्कृत व संस्कारों को मिटा कर पाश्चात्य भाषा, रहन-सहन आदि में परिवर्तन करना । अंग्रेज़ी पढ़ना कोई बुरी बात नहीं परन्तु उसके पीछे अपनी भाषा व संस्कृति को भूल जाना गलत है । अंग्रेज़ जो चाहते थे उसमें उन्हें सफलता मिली ।

पराधीनता में देश की दुर्दशा को ग़रीबी को, अनपढ़ता को महर्षि दयानन्द ने देखा । अंग्रेज़ी शासन के होते हुए भी उन्होंने देश की स्वतन्त्रता की बात कही और अपने अमरग्रंथ ''सत्यार्थप्रकाश'' में लिखा है–

कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है । अथवा, मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है ।

महर्षि के 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रंथ को जिस किसी ने पढ़ा, उसकी कायाकल्प हो गई अर्थात् देश प्रेम की भावना जागृत हो गई और वह देश को स्वतन्त्र कराने के लिये अपना तन, मन, धन न्यौछावर करने को तैयार हो गया । यदि महर्षि दयानन्द देशप्रेम की भावना को नौजवानों में न जगाते तो देश कभी भी आज़ाद नहीं हो सकता था ।

देश के लिये जिन वीरों ने अपने प्राणों की आहूति दी, उनको मेरा शत्-शत् नमन् । उन वीरों के बलिदान को देशवासियों को कभी नहीं भूलाना

चाहिये । जिसने भी इतिहास में शहीदों की कुर्बानी से मिली आज़ादी के वर्णन के स्थान पर यह अंकित किया कि 'गांधी जी बिना खून की बूंद बहाये आज़ादी लाये' उसने शहीदों को एक प्रकार से अपमानित किया है । मैं यहाँ गांधीजी के विषय में कोई टिप्पणी नहीं करना चाहता । जो गांधीजी की वास्तविकता को नहीं जानते वे इस विषय में कई विद्वानों द्वारा गांधी जी पर लिखी पुस्तकों का अध्ययन अवश्य करें ताकि गांधीजी की वास्तविकता को जान सकें ।

श्री धर्मपाल कपूर जी ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिये शहीद क्रान्तिकारियों के विषय में उनकी शूरवीरता का वर्णन तो किया ही है, उनके ऊपर अंग्रेज़ों द्वारा किये गये अत्याचारों का भी संक्षिप्त वर्णन किया है । इस प्रकार की पुस्तकों को देश के नव युवकों को पढ़ाना अति आवश्यक है । ताकि वे देश पर हुए शहीदों से देश प्रेम की भावना को अपने अन्दर जगा सके । वैसे तो देश में रहने वाले प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य देश के प्रति बनता है कि वह देश के लिये अपना तन-मन-धन न्यौछावर करने के लिए प्रति क्षण उद्यत रहे । देश को सुरक्षित रखना अति आवश्यक है । हज़ारों वर्षों से देश ने जो विदेशियों के अत्याचार सहे थे, वे दिन कभी न आये, इसके लिए सदा प्रत्येक भारतवासी को प्रयासरत रहना है । परन्तु यह तभी सम्भव हो पायेगा जब देश की युवा पीढ़ी को देश के शहीदों की कुर्बानी के बारे में बताया जाये, पढ़ाया जाये, सिखाया जाये । बहुत से देश हैं जो आरम्भ से ही बच्चों को देश की सुरक्षा के लिये शिक्षा देते हैं, उनको शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार करते हैं ।

जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिये अपने प्राण न्यौछावर किये, उनसे जो प्रतिज्ञा कराई जाती वह इस प्रकार से थी–

छत्रपति शिवा जी के नाम पर, अपने पवित्र धर्म के नाम पर, अपने प्यारे देश के लिये, पूर्व पुरुषों की कसम खाते हुए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा राष्ट्र तभी समृद्धिशाली होगा अथवा हो सकता है जब उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो ।

इस विश्वास से मैं तन-मन-धन से देश की स्वतन्त्रता और उसके सब प्रकार के कल्याण की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं अपनी अन्तिम सांस तक अधिक से अधिक परिश्रम करूँगा। मैं न तो आलस्य करूँगा और न मैं अपनी अन्तिम सांस तक अधिक से अधिक परिश्रम करूँगा। मैं न तो आलस्य करूँगा और न इस उद्देश्य से हटूंगा। मैं अभिनव भारत की नियमावली का पालन करूँगा और संस्था के विषय में किसी से कुछ भी नहीं बोलूंगा।

यह प्रतिज्ञा निभाते हुए क्रान्तिकारी शहीद हुए, बहुत से प्रतिज्ञा न निभा पाये और सारा भेद अंग्रेज़ों को देकर क्रान्तिकारियों को बंदी बनवाया और अंग्रेज़ों ने झूठे केसों में फंसा कर फाँसी चढ़ाया। कितने अत्याचार क्रान्तिकारियों पर किये गये परन्तु उन्होंने कभी देश (भारतमाता के साथ) गद्दारी नहीं की। गद्दारों के कारण बहुत से क्रान्तिकारियों को फांसी के फंदे चूमने पड़े। दिल के दहलाने वाली शहीदों की आत्मकथायें हैं।

यह देश का दुर्भाग्य पहले से ही रहा है। देश में जयचन्द पहले से ही पैदा होते आये हैं वर्तमान में भी हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। देश को तो कुछ ही महान् आत्मायें चलाती हैं, अधिकतर देश विरोधी गतिविधियों में ही संलिप्त रहते हैं। अपना घर भरते हैं।

एक बात अंत में अवश्य लिखना चाहता हूँ कि यदि क्रान्तिकारी अपना बलिदान न देते तो देश कभी भी आज़ाद न होता। अगर नेता जी सुभाष चन्द्र बोस आज़ाद हिन्द फौज न बनाते तो भी अंग्रेज़ देश छोड़ कभी न जाते। आज़ादी के मिलने पर देश के नेताओं की क्या गतिविधियां रही वे भी जानने योग्य हैं। उनको भी देश हित के लिए जानना अति आवश्यक हैं–

ऐ मेरे वतन के लोगो, जरा आँख में भर लो पानी।
जो शहीद हुए हैं उनकी, जरा याद करो कुर्बानी।

देश की सुरक्षा व गोपनीयता की कसम तो नेता भी लेते हैं, परन्तु कितने निभाते हैं। ये सब जानते हैं।

श्री धर्मपाल कपूर जी की इस ''भारत के क्रान्तिकारी'' पुस्तक को मैंने

पढ़ा व इसका सम्पादन भी किया है। यह पुस्तक अधिकतर नवयुवकों के लिये प्रेरणास्रोत बनेगी और उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये ताकि वे जान सकें कि इस स्वतन्त्रता के लिए कितने ने अपने प्राणों की आहूति दी। वास्तव में देश को आज़ादी बिना खून बहाय नहीं मिली। नेता जी सुभाष चन्द्र के शब्दों को याद करो– **तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा** और वास्तव में ऐसा ही हुआ।

मैं सब देशवासियों से अनुरोध करना चाहूँगा कि पुनः देश अब बड़ी नाजुक स्थिति में है, विरोधी ताकतें जोर पकड़ती जा रही है। अब सावधानी वर्तने व देश की सुरक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण क़दम उठाने की अति आवश्यकता है।

लाल चन्द चौहान
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591, सैक्टर 12,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
मोबाइल : 8557057170
मोबाइल : 7508201740

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	मंगलपाण्डे	1
2.	झांसी की रानी लक्ष्मी बाई	5
3.	तांत्या टोपे	9
4.	लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	11
5.	विपिनचन्द्र पाल	14
6.	लाला लाजपतराय	15
7.	श्यामजी कृष्ण वर्मा	20
8.	मदन लाल धींगड़ा	29
9.	भाई बालमुकुन्द	34
10.	अमीरचन्द	39
11.	लाला हरदयाल	44
12.	सोहन लाल पाठक	50
13.	पंडित काशीराम	55
14.	करतार सिंह	58
15.	भाई परमानन्द	62
16.	सरदार ऊधम सिंह	68
17.	शहीद खुशीराम	72
18.	रामप्रसाद बिस्मिल	74
19.	अशफाक उल्ला खां	81
20.	सरदार भक्त सिंह	87
21.	शिवराम राजगुरु	92
22.	सुखदेव	95
23.	चन्द्रशेखर आज़ाद	97
24.	नेताजी सुभाष चन्द्र बोस	103
25.	लोहपुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल	111

मंगल पाण्डे

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई

तांत्या टोपे

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

विपिनचन्द्र पाल

लाला लाजपतराय

श्यामजी कृष्ण वर्मा

मदन लाल धीगड़ा

भाई बालमुकुन्द

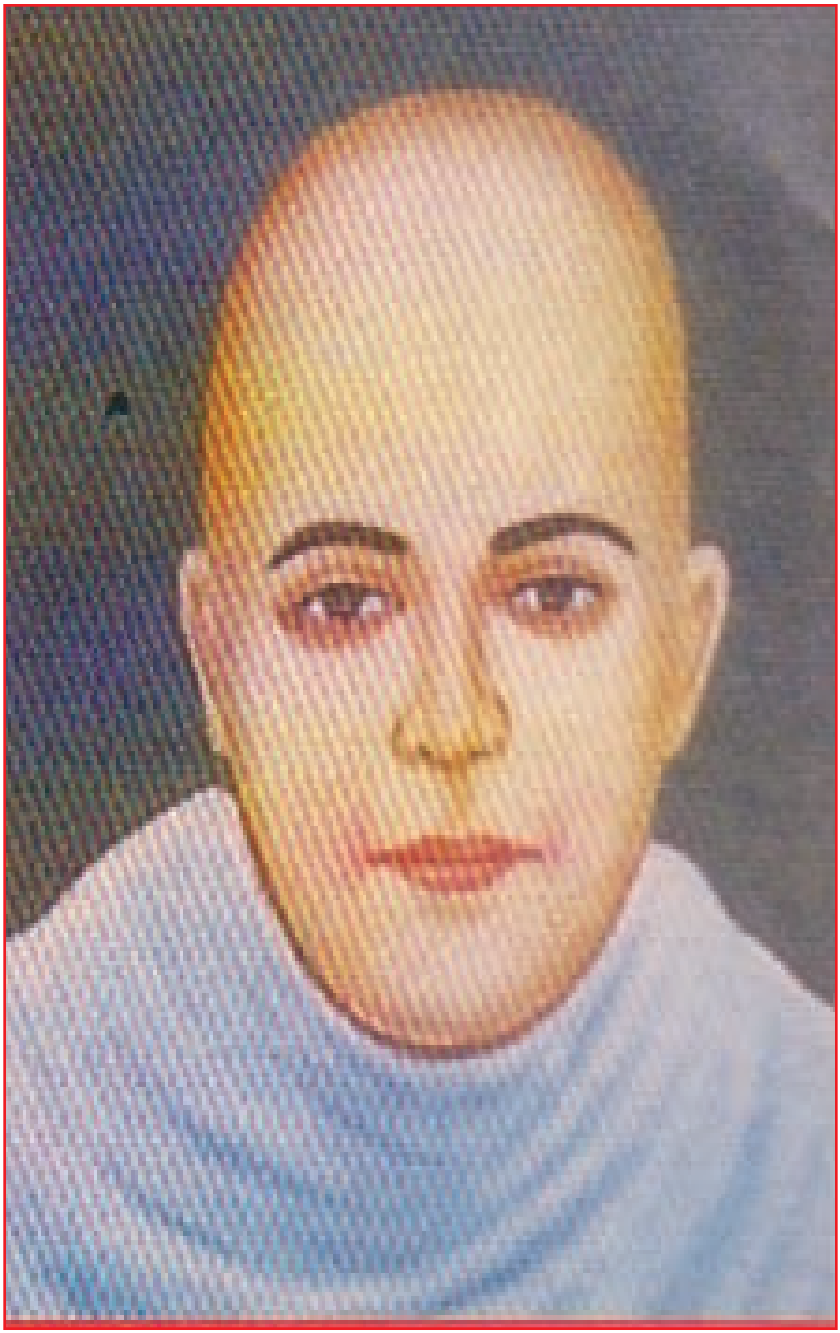

अमीरचन्द

लाला हरदयाल

सोहन लाल पाठक

पण्डित काशीराम

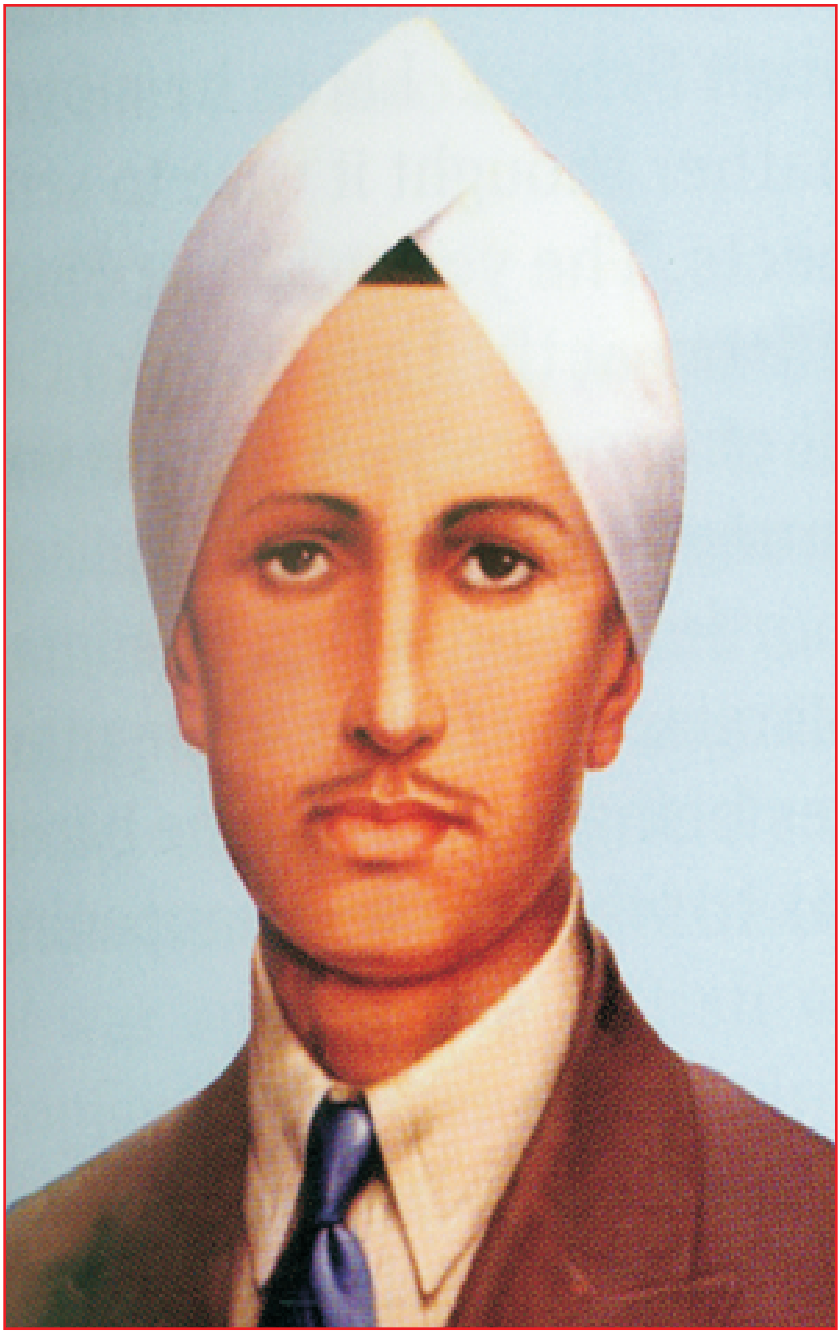

करतार सिंह

भाई परमानन्द

सरदार ऊधम सिंह

शहीद खुशीराम

रामप्रसाद बिस्मिल

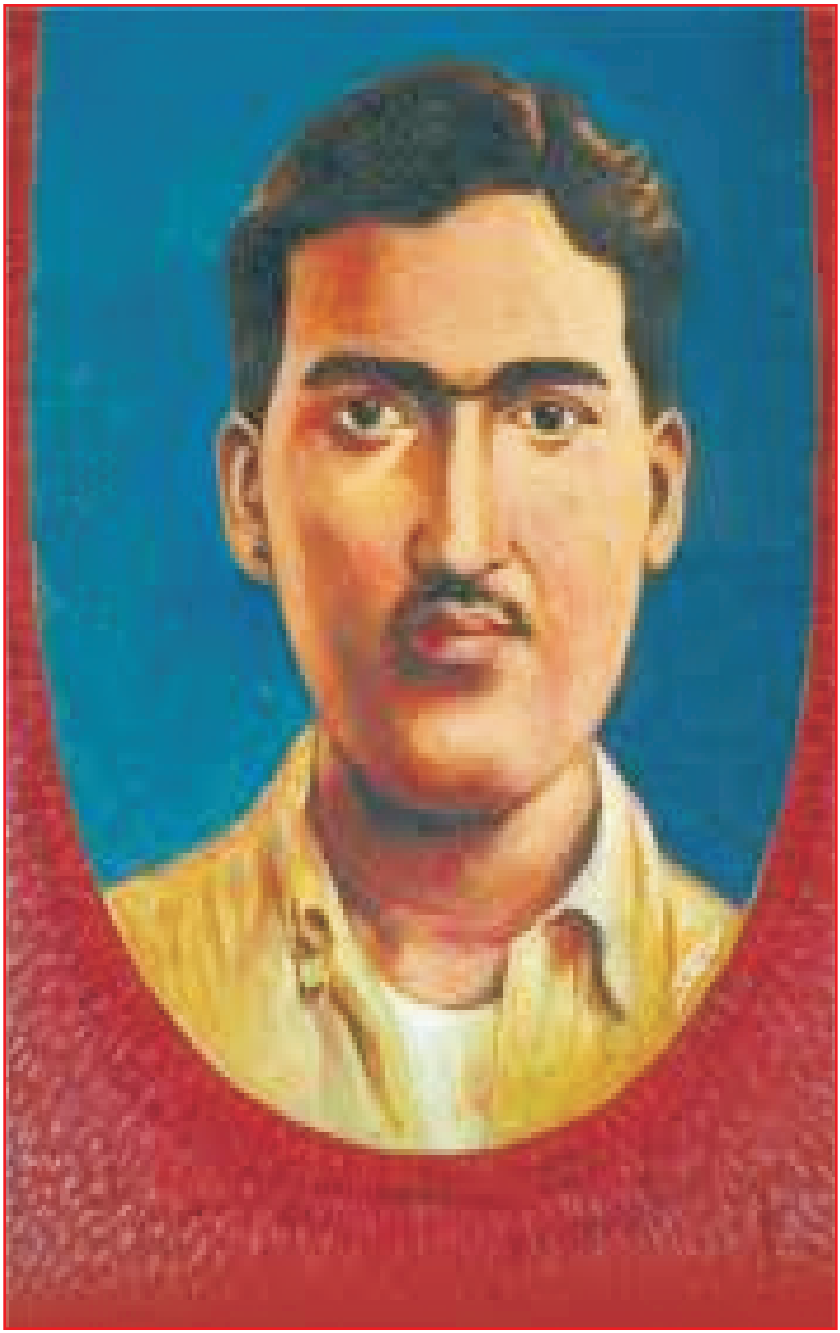

अशफाक उल्ला खां

सरदार भक्त सिंह

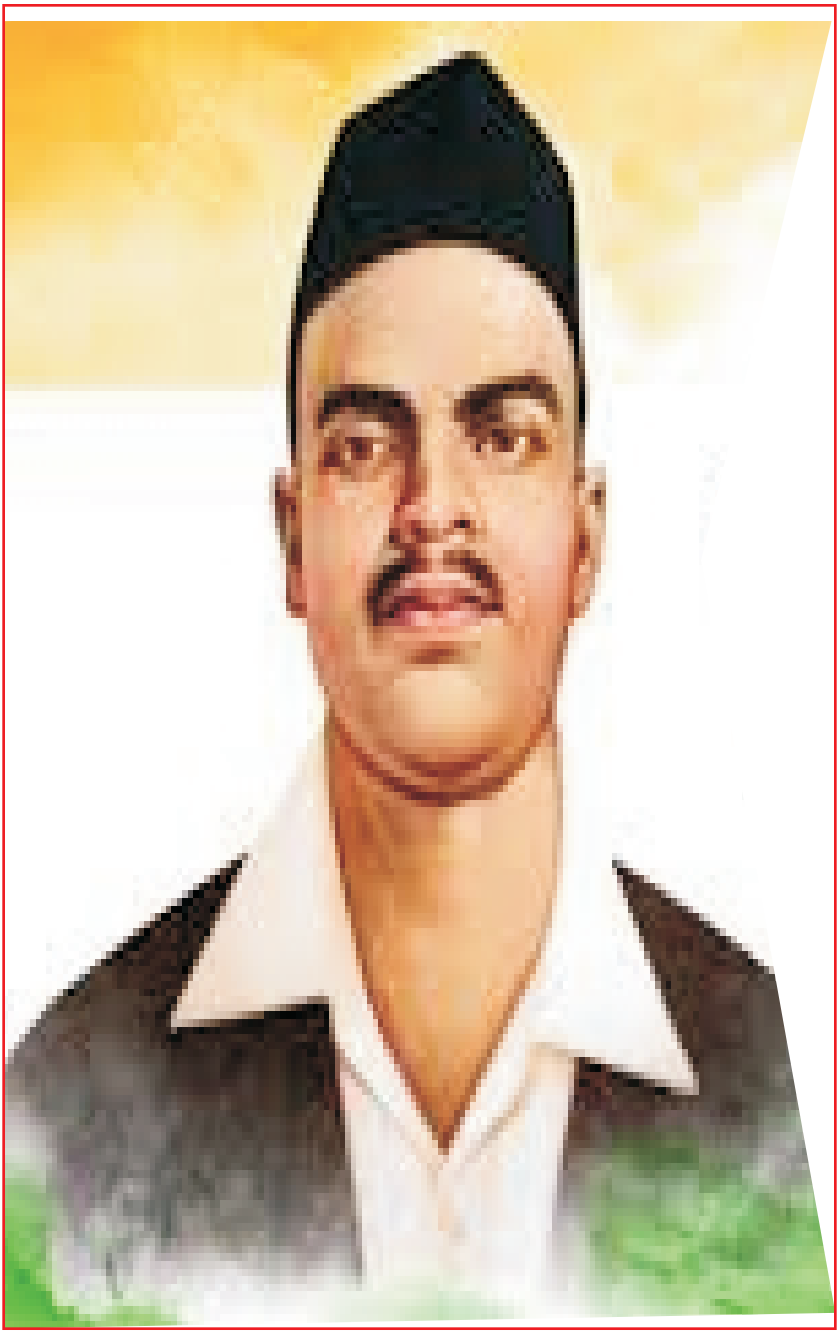

शिवराम राजगुरु

सुखदेव

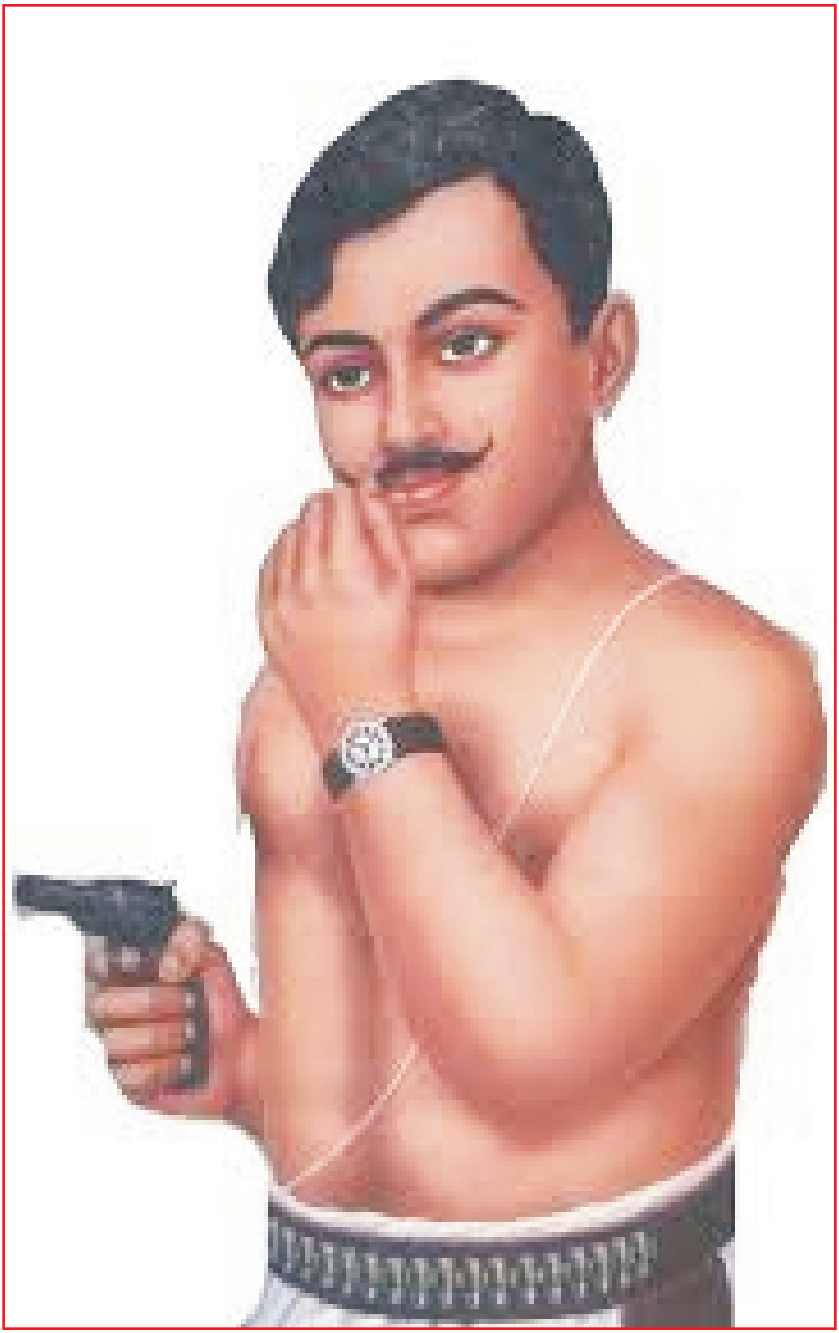

चन्द्रशेखर आज़ाद

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

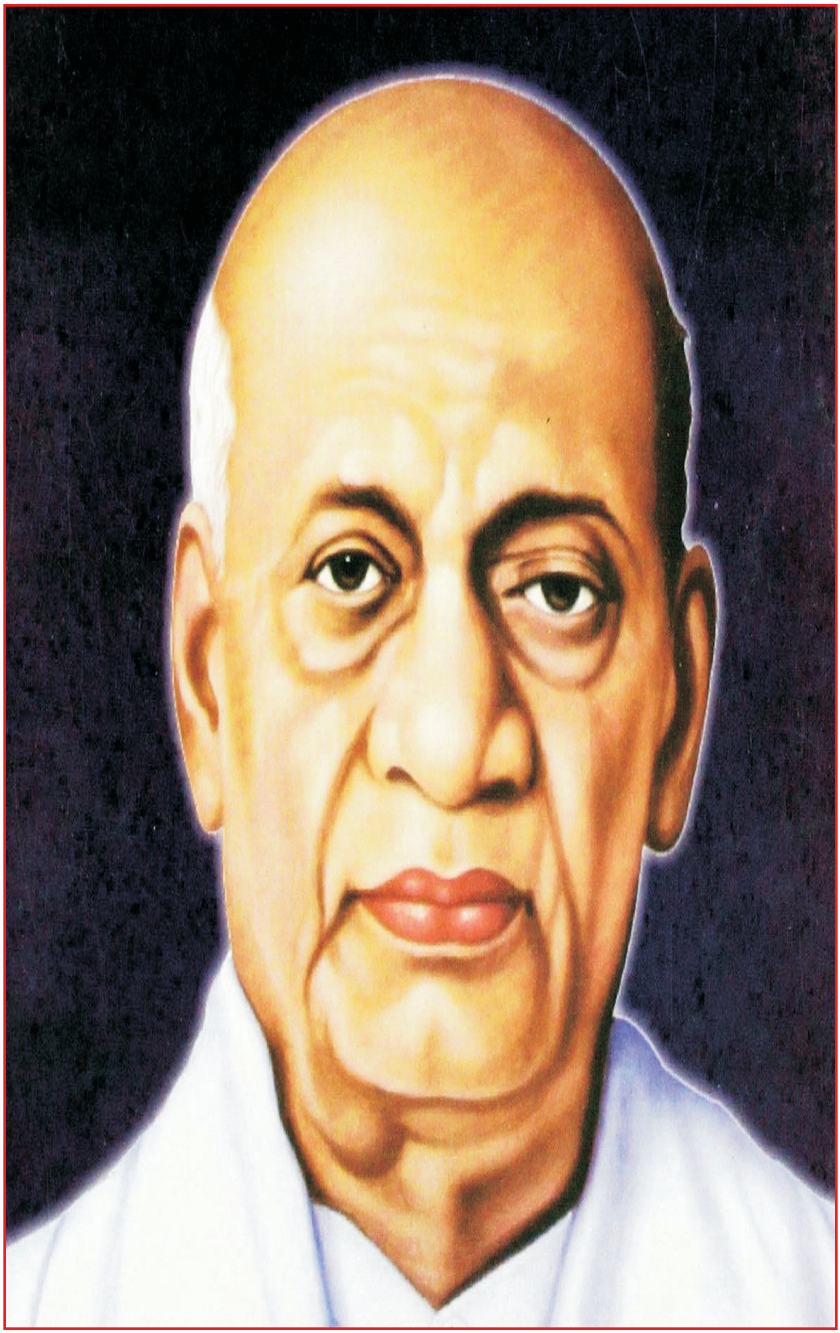

लोहपुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल

1. मंगल पाण्डे

अंग्रेज़ भारत में व्यापारी बनकर आये थे। शाहजहाँ के दरबार में जिस सर टॉमस रो ने व्यापारिक सुविधाओं के लिये घुटनों के बल झुक कर निवेदन किया था वही अंग्रेज़ 1850 तक भारत सम्राट बन बैठा। मुगल सम्राट उनके हाथों की कठपुतली बन कर रह गया। भारतीय जनता अंग्रेज़ों के इस कुचक्र को समझ नहीं पाई। उसे चेत तब हुआ जब राजनैतिक विजय के बाद अंग्रेज़ों ने सांस्कृतिक विजय करने की ठानी और वैसे ही प्रयास आरम्भ कर दिये।

भारती जनमानस धर्म व संस्कृति से ही नियंत्रित, संचालित रहा है। जब धर्म व संस्कृति पर चोट पड़ने लगी तो उन्हें चेत आया, वे क्षुब्ध हो उठे। भीतर ही भीतर विप्लव की पृष्ठभूमि बनने लगी। 1857 में मंगल पाण्डे नामक एक युवा सैनिक ने इस विप्लव को स्वर दिया। देखते ही देखते यह स्वर महारोग बनकर भारत के दिग्दिंगत को प्रकम्पित करने लगा। अंग्रेज़ों के साम्राज्यकी प्राचीरें ढहने लगीं।

अंग्रेज़ इतिहासकार ने उस विस्फोट को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया–

> **21 मार्च, 1857 को बैरकपुर की 34वीं हिन्दुस्तानी बटालियन में असाधारण हलचल दिखाई दी। भारतीय हवलदार मेजर हाँफता हुआ अपने अंग्रेज़ अधिकारी के पास आया और यह खबर सुनाई कि एक दबंग सिपाही ने यह घोषणा कर दी है कि वह बागी है। वह बैरकों में क्रान्ति का प्रचार करता हुआ घूम रहा है।**

लैफ्टीनैंट घोड़े पर सवार होकर लाइन की ओर गया तो क्या देखता है कि एक जवान सिपाही जिसका नाम मंगल पाण्डे था, सिपाहियों में घूम-घूमकर यह प्रचार कर रहा है–

> **अंग्रेज़ सरकार हमारे धर्म का नाश कर रही है। हमें उसकी नौकरी छोड़ देनी चाहिये।**

वह यह घोषणा भी करता जा रहा था—

मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि जो भी अंग्रेज़ मेरे सामने आयेगा उसे गोली मार कर ढेर कर दूँगा ।

बगावत का प्रचार कर ही रहा था कि अंग्रेज़ लैफ्टीनैंट उसके सामने जा पहुँचा । मंगल पाण्डे ने क्षण भर का विलम्ब किये बिना उस पर गोली दाग दी । अंग्रेज़ अफसर ने गोली बचाने के लिये घोड़े को मोड़ दिया । फलस्वरूप गोली घोड़े को लग गई और वह कूद कर दूर जा खड़ा हुआ । उसने दूर खड़े मंगल पाण्डे पर गोली चलाई पर वह खाली गई । बिफरे सिंह की तरह मंगल पाण्ड उस पर टूट पड़ा व अपनी तलवार से उसे परमधाम पहुँचा दिया । लैफ्टीनैंट की सहायता के लिए एक अंग्रेज़ सार्जेण्ट मेजर दौड़कर आया उसका भी मंगल पाण्डे ने काम तमाम कर दिया ।

बीस भारतीय सिपाही मंगल पाण्डे की इस कारगुजारी को देखते रहे । मेजर जनरल भी यह वारदात देख रहा था, किन्तु न वह बीच मे पड़ा न उसके आदेश को मानकर भारतीय सिपाहियों ने इस बिफरे शेर को ही पकड़ा । उनमें भी देशप्रेम व स्वधर्म रक्षण की उमंगें बलवती होने लगी थीं । 34वीं पलटन के कर्नल ह्वीलर ने भी उन्हें मंगल पाण्डे को पकड़ने का आदेश दिया पर उन्होंने अनसूना कर दिया ।

दोनों अंग्रेज़ मंगल पाण्डे की असिधारा के वार से मर चुके थे । दूसरे अंग्रेज़ खड़े-खड़े देख रहे थे । किसी में उसे पकड़ने का साहस शेष नहीं रहा था । भारतीय सिपाही आदेश मानने को तैयार नहीं थे । छोटे अफसर इस प्रकार उस काण्ड को हतप्रभ हो देख ही रहे थे कि तभी फौज का बड़ा अफसर वहा आया और उसने अंग्रेज़ों को उनकी कायरता पर धिक्कारा । तब वे संगठित होर आगे बढ़े । परन्तु मंगल पाण्डे बंदी नहीं होना चाहता था । उसने अपनी बन्दूक का मुँह अपने सीने की ओर कर गोली दाग दी । किन्तु वह मर नहीं सका, पकड़ा गया ।

मंगल पाण्डे ने जिस क्राँति का शंख फूँख था उसके बीज कभी के भारतीय जनता व सैनिकों में पड़ चुके थे । उनकी अभिव्यक्ति भर होनी बाकी

थी । ईसाई धर्म प्रसार के लिए अंग्रेज़ पादरियों की धड़ाधड़ नियुक्तियाँ होना तथा गाय व सुअर की चर्बी लगे कारतूसों का अंग्रेज़ सरकार द्वारा निर्माण कराया जाना, जिन्हें दाँतों से तोड़ना पड़ता था । ऐसे प्रत्यक्ष कारण थे जिनसे भारतीय जनमानस में विक्षोभ की लहर-सी फैल गई थी । यही नहीं भारतीय रीति-रिवाजों में भी अंग्रेज़ों ने हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था । बिठूर के नाना साहब पेशवा, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भी उनकी अन्यायपूर्ण नीति के शिकार हो चुके थे । पेशवा गुप्त रूप से क्राँति की अद्‌भुत योजना के ताने-बाने बुनकर उसके सुनियोजित ढंग से विस्फोट की ताक लगाये बैठा था ।

बैरकपुर के भारतीय सैनिकों में भी ऐसी ही बातों को लेकर रोष फैल चुका था । मंगल पाण्डे के इस साहसिक कार्य से उस रोष का विस्फोट हो चुका था । अंग्रेज़ अब तक भारतवासियों को खरीदे हए गुलाम समझते थे और उन्हीं के बल पर मुट्‌ठी भर अंग्रेज़ों ने अपनी कूटनीति के सहारे इस विशाल देश पर साम्राज्य जमा लिया था । किन्तु उन्होंने अब इनका दूसरा ही ही रूप देखा था । अपने धर्म पर आँच आते देखकर वे किस प्रकार बगावत कर सकते हैं । यह इस घटना ने स्पष्ट कर दिया था ।

मंगल पाण्डे को घायल अवस्था में बन्दी बना लिया गया । उसने अपना कार्य पूर्ण कर लिया था । एक क्रिया उसने की थी, उसकी प्रतिक्रिया भारतीय सैनिकों पर हो रही थी । धीरे-धीरे ही सही, परन्तु वह ठोस प्रभाव डाल रही थी और समय पकार वह राष्ट्रव्यापी क्राँति के रूप मे फूट पड़ी थी । कुछ दिन बाद उसका कोर्ट मार्शल किया गया, जिसमें उसे फाँसी की सजा सुनाई गई, ताकि हिन्दुस्तानी सैनिक बगावत का परिणाम देखें । हिन्दुस्तानी सिपाहियों के प्रति अंग्रेज़ इतने सशंक हो उठे थे कि उन्हें फाँसी देने के लिए चार आदमी कलकत्ते से बुलाने पड़े थे । मंगल पाण्डे को भारतीय सिपाहियों के सामने फाँसी दी गई । अंग्रेज़ों ने आश्चर्य से देखा कि फरँसी के फन्दे को गले लगाते समय उसके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी—उदासी का कोई चिह्न नहीं था, वरन वह झूमता हुआ फाँसी के तख्ते पर चढ़ा । उस समय उसके तरुण मुख मण्डल पर देशप्रेम की स्वर्णिम आभा चमक रही थी । उसकी निगाहें कह रही

थीं कि तुम अब यहाँ राज्य नहीं कर सकते। उन्हें देखकर अंग्रेज़ सैनिक पदाधिकारी सहम उठे थे। मरने के पहले भी वह हिन्दुस्तानी सैनिकों को देश-धर्म की बलिवेदी पर प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा देता रहा था।

मंगल पाण्डे का पार्थिव शरीर तो फाँसी पर झूल गया परन्तु उसकी ये प्रेरणायें हज़ार गुणा प्रबल होकर जनमानस को आन्दोलित करती रही। इसी के परिणामस्वरूप 1857 की इतिहास प्रसिद्ध क्राँति हुई। एक दिन अंग्रेज़ों को भारत छोड़कर जाना ही पड़ा। सच है कोई बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। कोई सत्कार्य अप्रभावी नहीं होता।

दृढ़ गर्जना

स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानी मंगल पाण्डे को तब तक फाँसी की सज़ा का आदेश सुनाया नहीं गया था। जज ने कहा–तुमने राजद्रोह किया है अतः तुम्हें अंग्रेज़ी सरकार से क्षमा मांगनी चाहिये। मंगल पाण्डे ने दृढ़ता के साथ कहा–मैं अंग्रेज़ों को इस देश का भाग्य विधाता नहीं मानता। वह अपने मुँह से राजा बनना चाहते हैं, तो बनते रहें। मैं उनसे अपने देश को मुक्त कराना चाहता हूँ और यदि यही मेरा अपराध है तो मैं प्रत्येक प्रकार का दण्ड स्वीकार करने को तैयार हूँ और दूसरे ही क्षण अंग्रेज़ जज ने उसे फाँसी की सज़ा सुना दी।

2. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

महारानी लक्ष्मीबाई एक साधारण घराने में उत्पन्न एक साधारण लड़की थी। उसके पिता पेशवा के सेवक थे। परन्तु जब पेशवाई खत्म हो गई, तो वह काशी में आकर बव गए। महारानी का बचपन का नाम मनुबाई था और कोई-कोई उन्हें प्रेम से छबीली भी कह दिया करता था। बाद में वह अपने पिता के साथ बिठूर गई, जहाँ पेशवा बाजीराव के गोद लिए हुए पुत्र नाना साहब रहते थे। दोनों में भाई-बहन का रिश्ता हो गया और दोनों खेल-कूद अस्त्र-शस्त्र चलाना, घुड़सवारी एक साथ करते थे। इस प्रकार दोनों के विचार भी एक तरह से बनते रहे।

मनुबाई की शादी झांसी के गंगाधर राव के साथ हुई। 1842 में गंगाधर राव झांसी की गद्दी पर बैठे थे। पहली रानी के मर जाने पर उन्होंने मनुबाई के साथ शादी की। यही मनुबाई बाद में रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सन् 1857 में महारानी लक्ष्मीबाई के पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु वह तीन महीने के अन्दर ही मर गया। इसके बाद गंगाधर राव का स्वास्थ्य गिरने लगा। बड़ी कठिनाई से तीर्थयात्र, पूजापाठ आदि करके बच्चा उत्पन्न हुआ था। उसके मर जाने पर गंगाधर राव निराश हो गए। तब उन्होंने कम्पनी की सरकार को एक खरीता भेजा, जिसमें यह प्रार्थना की कि मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है। मैं शायद ज्यादा दिन नहीं जीऊँ, अंग्रेज़ी सरकार से मेरी जो सन्धि हुई है, उनके अनुसार मैंने एक पाँच वर्ष के लड़के आनन्दराव को गोद ले लिया है। यह लड़का मेरे ही वंश का हैं सरकार इसे मेरा उत्तराधिकारी स्वीकार कर ले। जब तक मेरी रानी जिन्दा है, वह राज्य की मालिक और पुत्र की माता मानी जाए और राज्य की व्यवस्था उसके हाथ में रहे। परन्तु गंगाधर राव की मृत्यु के बाद गवर्नर जनरल ने आनन्दराव को गंगाधर राव का उत्तराधिकारी नहीं माना। यहाँ तक कि रानी का भी कोई अधिकार नहीं माना गया और झांसी का शासन एक राजनैतिक एजेन्ट ऐलिस को सौंप दिया गयां कहते हैं इन्हीं

दिनों जब लक्ष्मीबाई ने यह घोषणपत्र सुना, तो उनकी आँखों में आँसू आ गये और उन्होंने कहा—मैं अपनी झांसी नहीं दूँगी ।

गंगाधर राव की सम्पत्ति पर भी अंग्रेज़ी सरकार ने कब्ज़ा कर लिया । किला और उसके साथ का महल अंग्रेज़ों के हाथों में चले गये । केवल शहर का महल रानी को रहने के लिए दिया गया । रानी ने उमेशचन्द्र बनर्जी को अपने मामले के लिए इंग्लैंड भेजा था, परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ । लोग दुःखी थे कि रानी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हुआ ।

इन्हीं दिनों मेरठ और दिल्ली में विद्रोह हुआ और झांसी पर भी इसका प्रभाव पड़ा । जब झांसी में विद्रोह हुआ तो कुछ अंग्रेज़ मारे गये और दोनों तरफ से कुछ लड़ाई हुई । पहले रानी खुल कर विद्रोह में नहीं आई, परन्तु बाद में वह आ गई । लोगों में बड़ा उत्साह था और लक्ष्मीबाई को यह आशा थी कि बाहर से नई फौजें आएंगी । तात्यां टोपे 20,000 फौज़ लेकर झांसी की रक्षा के लिए आए । घमासान लड़ाई हुई, परन्तु दुर्भाग्य से तात्यां हार गए और उनकी फौज़ लौट गई । इस हार से लोगों में कुछ निराशा फैली, परन्तु ऊपर से सब लोग शान्त रहे ।

विद्रोहियों के कब्ज़े में झांसी का जो किला था, उस पर बड़े जोरों से अंग्रेज़ों का आक्रमण हुआ, इंच-इंच भूमि के लिए लड़ाई हुई । परन्तु जीत अंग्रेज़ों की ही हुई, क्योंकि उनके पास बड़ी सेना थी । इसके अतिरिक्त कुछ साथियों ने धोखा भी दिया । झांसी पर विद्रोहियों की विजय हुई थी और काफी दिनों तक विद्रोहियों का झण्डा झांसी के किले पर फहराता रहा, परन्तु यह झांसी की सबसे बड़ी घटना नहीं है । सबसे बड़ी घटना है महारानी की वीरता और अंग्रेज़ सेना से लड़ते-लड़ते शहीद होना । उसका कुछ ब्यौरा इस प्रकार है ।

झांसी का युद्ध

महारानी ने जब देखा कि अब कोई आशा नहीं है तो वह भाग कर दूसरी जगह मोर्चा लेने को बढ़ी । उनका पीछा अंग्रेज़ी सेना ने किया । जब यह देखा गया कि महारानी खतरे में हैं, तब उनके 40 अनुयायी पीछे लौअ

पड़े और अंग्रेज़ सेना से लड़ाइ करते रहे । ये सारे 40 सैनिक लड़ते हुए मारे गये ।

40 सैनिकों ने प्राण दे दिये । नतीजा यह हुआ कि महारानी पकड़ी नहीं जा सकी और वह साफ निकल गई । वह घोड़े पर कालपी पहुँच गई । वहीं सब विद्रोही इकट्ठे थे । परन्तु वहाँ भी शत्रु की फौज़ पहुँच गई और 23 मई को कालपी तथा उसके इर्दगिद् के सारे इलाके पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया । जब कालपी में भी हार हो गई, तो विद्रोहियों में चिन्ता पैदा हुई । विरोधियों में निराशा फैल रही थी । ग्वालियर से कुछ सहायता की आशा थी इसलिए सब लोग उस तरह चले । महारानी ने देखा कि भागते ही रहना है और भागती रही, परन्तु वह भागती जाती थी । अवश्य इस लड़ाई का कोई असर नहीं हो रहा था । शत्रु सेना प्रबल थी । आखिर बड़ी लड़ाई ग्वालियर में हुई । परन्तु वहाँ भी विद्रोही जीत नहीं पाए । सेना में भगदड़ मच गई । रानी फिर वहाँ से निकल गई ।

महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु कैसे हुई इस सम्बन्ध में बहुत तरह की कथाएं हैं । एक अंग्रेज़ मैकफर्सन के अनुसार फूलबाग़ के तोपखाने के पास महारानी लक्ष्मीबाई शहीद हुई । कहा जाता है कि वह घोड़े से उतर कर पानी पी रही थीं कि यह खबर आई कि शत्रु के घुड़सवार आ गए । महारानी के साथ उस समय लड़ते-मरते केवल 15 साथी रह गये थे । इन्हीं के साथ महारानी लड़ाई में कूद पड़ी । उनका पुराना घोड़ा उनके पास नहीं था । जो घोड़ा था, वह ठीक से काम नहीं कर रहा था । एक नाला फांद कर पार करना था । परन्तु घोड़ा उसे पार न कर सका और महारानी के बाजू में गोली लगी । फिर सिर पर तलवार का एक हाथ पड़ा । फिर भी वह घोड़े पर चढ़ी चलती रही । वह थोड़ी ही देर में वहाँ गिर पड़ी । विद्रोहियों ने उनकी दाह क्रिया उसी बाग़ में कर दी ।

हर्बर्ट हैमिल्टन ने यह लिखा है कि महारानी घोड़े पर थीं और उनके साथ उनकी मुसलमान नौकरानी भी थी, जो हर वक़्त उसके साथ रहती थी । उन दोनों को गोली लगी और दोनों गिर पड़ीं महारानी इसके बाद भी 20

मिनट तक जीवित रही। वहाँ से वह फूलबाग़ ले जाई गई जहाँ उनकी दाहक्रिया की गई। किंवदन्ती ने इसके साथ एक साधु का आश्रम जोड़ दिया है। कहा जाता है कि उस साधु ने महारानी को शहीद होते हुए देखा तो उसके पास उस वक्त कोई लकड़ी आदि नहीं थी और शत्रु आ रहे थे इसलिए उसने अपनी कुटिया में महारानी की लाश रखी और उसमें आग लगा दी। इस प्रकार सभी तरह से यह पता चलता हे कि महारानी लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुई और उनकी लाश शत्रु के हाथ नहीं लगी। महारानी युद्ध क्षेत्र में एक वीर सैनिक की भाँति शहीद हुई। उस समय उनकी आयु लगभग 20 वर्ष थी।

3. तांत्या टोपे

तांत्या टोपे बिठूर के राजा नाना साहब पेशवा का एक चतुर और पराक्रम सेनापति था। नाना साहब को जो अनेक विजयें और यश प्राप्त हुआ उसका मुख्य कारण तांत्या टोपे ही था। इसका जन्म पूना (महाराष्ट्र) में हुआ। सन् 1857 की क्रान्ति में तांत्या टोपे का महत्वपूर्ण योगदान था। अंग्रेज़ों के विरुद्ध सारे भारत में गुप्त संगठन का निर्माण करने का श्रेय भी तांत्या ओपे को ही मिलता है। भारतीय मूल की बहुत सारी अंग्रेज़ी सेना को तांत्या ने अपने साथ मिलाने का अद्‌भुत कार्य किया। अंग्रेज़ों से तांत्या ने अनेक युद्ध किये। तांत्या ने 9 नवम्बर 1857 को कालपी तथा 26 नवम्बर 1857 के आक्रमण में कानपुर को जीता। झांसी पर विजय प्राप्त करने के लिए इसने भयंकर युद्ध किया जिसमें इसके 1500 सैनिक मारे गये। इसके पश्चात् ग्वालियर पर विजय प्राप्त की। अंग्रेज़ों से घिर जाने के कारण 20 जून 1858 को तांत्या ने ग्वालियर से निकल कर नर्मदा पार कर जाने की कोशिका की; किन्तु अंग्रेज़ सेना ने सामने आकर उसे रोक दिया।

तांत्या अंग्रेज़ों के लिए बहुत खतरनाक योद्धा बना हुआ था। उसको चारों ओर से घेर कर पकड़ने की योजना बनाई गई। परन्तु वह चीते के समान अंग्रेज़ सेनाओं के चंगुल से निकल भागा। वह अंग्रेज़ी सेना से युद्ध करते हुए भरतपुर, जयपुर, बूंदी, भीलवाड़ा, झालरा पाटन, चम्बल नदी की ओर निकल भागा। अंग्रेज़ी सेना रात-दिन उसकी खोज में लगी रहती। इसी बीच सिंधिया का मानसिंह नामक एक सरदार भी तांत्या से आ मिला। 16 जनवरी को देवास में सवेरे ये सब बैठे विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि अंग्रेज़ सिपाहियों ने आ घेरा। वहाँ से भी ये लोग भाग निकलने में सफल रहे। इसके बाद तांत्या अलवर के निकट 'शिखर जी' नामक स्थान पर दिखाई दिये।

एक दिन तांत्या अपने कुछ साथियों के साथ मानसिंह से मिलने चला गया। मानसिंह ने उसे अपने पास रोक लिया। गद्‌दार मानसिंह न उसे 7

अप्रैल 1859 को आधी रात के समय अंग्रेज़ों को बुलाकर तांत्या टोपे को पकड़वा दिया। इस बीच मानसिंह गुप्त रूप से अंग्रेज़ों से मिल चुका था। 18 अप्रैल, 1859 को तांत्या टोपे को भारी सेना की पहरेदरी में फांसी पर लटका दिया गया। तांत्या ने हँसते हुए अपने हाथों से फांसी का फंदा अपने गले में डाला। इस तरह 1857 की क्रान्ति का यह वीर देश की आज़ादी के लिए शहीद हो गया।

4. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, का उद्घोष करने वाले देशभक्त और क्रान्ति के समर्थक बाल गंगाधर तिलक का जन्म रत्नागिरि जिले के 'चिबल' नामक गाँव में एक निर्धन ब्राह्मण गंगाधर पंत के घर हुआ। तिलक की कई बहनें थीं और ये सबसे छोटे थे। अतः परिवार में इन्हें 'बाल' कहकर पुकारा जाता था। कुशाग्र बुद्धि तिलक मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके डेक्कन कॉलेज पूना में 1876 में प्रविष्ट हुए। प्रथम श्रेणी में बी.ए. परीक्षा पास करके सन् 1879 में वकालत की डिग्री प्राप्त की । इनके एक निकट के साथी श्री आगरकर थे। दोनों ने देश सेवा करने का निश्चय किया।

पूना में श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने एक अंग्रेज़ी स्कूल खोला। दोनों साथी सरकारी नौकरी छोड़ उसमें सहयोग करने लगे। ये विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ देशभक्ति का पाठ पढ़ाते थे। देशभक्ति की भावना का प्रचार करने के लिए श्री तिलक ने 4 जनवरी 1881 से दो साप्ताहिक पत्र आरम्भ किये। 'केसरी' मराठी भाषा का और 'मराठा' अंग्रेज़ी का पत्र था। इन पत्रों में अंग्रेज़ी सरकार की कटु आलोचना करने के कारण इन्हें साथी सहित गिरफ़्तार कर लिया और 17.8.1882 को दोनों को चार मास की जेल हुई। जेल से छूटने के बाद 1888 में 'सुधारक' नामक पत्र आरम्भ किया।

इस बीच तिलक सामाजिक क्षेत्र में अपनी सक्रियता से बहुत प्रसिद्ध होते गये। इन्होंने महाराष्ट्र में 'गणपति उत्सव' को व्यापक लोकप्रिय बनाया और उसके माध्यम से जन जागृति की। इसी शैली में शिवाजी की जन्मभूमि रायगढ़ में उनके जन्म दिवस पर 'शिवाजी उत्सव' आरम्भ किये। ये उत्सव महाराष्ट्र में राष्ट्रीय जागरण के माध्यम बने और वहाँ स्वराज्य प्राप्ति के लिये नयी चेतना का संचार हो गया।

1897 में पूना में प्लेग की महामारी और दुर्भिक्ष फैले। अंग्रेज सरकार महारी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के उत्सव मनाने में इतनी मग्न थी कि उसने जनता के कष्ट का ध्यान नहीं दिया। अपितु प्लेग आफिसर रैंड प्लेग की आड़ में जनता को सताने और कष्ट देने लगा। उसकी यातनाओं से क्रुद्ध

होकर एक मराठी क्रान्तिकारी युवक दामोदर चापेकर ने उसे गोली से उड़ा दिया। श्री तिलक ने 15 जून 1897 के अंक में इस घटना पर एक लेख लिखा जिसमें सरकार के अधिकारी रैड को इस घटना का जिम्मेदार माना। तिलक को गिरफ़्तार कर लिया गया। जनता ने 50000 की राशि इकट्ठी कर अपने नेता को जमानत पर छुड़वा लिया, किन्तु अन्याय करने पर तुली गोरी सरकार ने निर्णय करते समय डेढ़ वर्ष की कठोर क़ैद दे डाली। इन घटनाओं से तिलक सारे भारत में प्रसिद्ध हो गये और एक संघर्षी नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जेल में तिलक का स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया। भारत भर से, यहाँ तक कि इंग्लैंड से प्रो. मैक्समूलर तक ने तिलक के स्वास्थ्य पर चिन्ता छोड़ने को तैयार हो गई। किन्तु तिलक माफी मांगने के लिए तैयार नहीं हुए। अन्नतः उन्हें एक वर्ष बाद स्वयं ही छोड़ दिया गया।

स्वास्थ्य ठीक होने पर आप मद्रास के और लखनऊ के कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए। जनता ने उनका खूब स्वागत किया। कांग्रेस में उनको 'गर्मदल' नेताओं में माना जाता था। नर्मदल के भीरू नेताओं ने इसी कारण तिलक को अध्यक्ष नहीं बनने दिया। किन्तु कांग्रेस पर गर्मदल के नेताओं का वर्चस्व बढ़ता ही गया।

मुजफ्फरपुर बमकाण्ड के बाद 'केसरी' में लिखे एक लेख में तिलक ने उस काण्ड के लिए अंग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीति को जिम्मेदार ठहराया, फिर भी तिलक पर मुक़द्दमा चलाया गया। तिलक ने अपनी पैरवी स्वयं की और एक सप्ताह तक चली बहस में 21 घंटे अपने तर्क प्रस्तुत किये। केवल न्याय का सिर्फ ढोंग ही करने वाली सरकार ने उन्हें छह वर्ष की कठोर क़ैद सुना दी और बर्मा की मांडले जेल में ले जाकर एक एकान्त की कोठरी में बंद कर दिया। इस कठिन समय का उसमें सदुपयोग इस रूप में किया कि एकाग्र और तपस्वी बनकर 'गीता रहस्य' नामक गीता की विस्तृत टीका लिखी तथा वेद सम्बन्धी ग्रंथ लिखे। वहाँ आपका स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। तब आपको पूना की जेल में स्थानांतरित कर दिया।

जेल से छूटकर उसने 'होमरूल लीग' (स्वराज्य संस्था) की स्थापना की। सरकार ने उसको फिर नोटिस दिया और जमानत के रूप में 40,000

रुपये जमा कराने के निर्देश दिये। इस केस में आप हाईकोर्ट से जीत गये। होमरूल लीग की ओर से उन्हें तथा एनीबेसेन्ट ने एक प्रतिनिधि मण्डल के रूप में इंग्लैंड जाकर स्वराज्य प्रदान करने का आग्रह किया। स्वराज्य आन्दोलन के कारण कांग्रेस और देश में उनकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक बढ़ी। जनता ने उनको उस समय एक लाख की थैली भेंट की, जो तब तक किसी भी नेता को नहीं मिली थी। उसने घोषणा की कि यह राशि स्वराज्य प्राप्ति के लिये व्यय की जायेगी। आपने 70,000 रुपये लाला लाजपतराय को दिये ताकि वे निर्बाध रूप से राष्ट्र सेवा का कार्य कर सकें।

रोगों, संघर्षों, जेलयातनाओं, भागदौड़ भरे कार्यक्रमों से लोकमान्य तिलक का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। अन्तिम समय उनको 5-6 दिन तक ज्वर आता रहा और इसी में उनकी जीवन यात्रा पूर्ण हो गई। बम्बई में ''बैंकवे'' नामक समुद्र तट पर उनका अन्तिम संस्कार किया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी सहित सभी बड़े नेता और दो-तीन लाख व्यक्ति उपस्थित थे। सरलता एवं सादगी और वैचारिक प्रखरता की प्रतिमूर्ति श्री तिलक के साथ स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्नों का एक अध्याय पूर्ण हो गया। आज उनका भौतिकक शरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु ये उद्घोष उनके वैचारिक शरीर को सदा अमर रखेगा—

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

5. विपिनचन्द्र पाल

लाल बाल पाल की गर्मदल की जोड़ी में बंगाल के जाने-माने नेता विपिनचन्द्र पाल को 'पाल' नाम से पुकारा जाता था। ये उत्कृष्ट, वक्ता, सुप्रतिष्ठित नेता, परम सत्यवादी और क्रान्तिकारी विचारों के समर्थक थे।

अरविन्द घोष 'वन्देमातरम्' पत्र निकालते थे परन्तु गुप्त रूप से। इस पत्र में बहुत ही जोशीले लेख छपते थे। उन लेखों ने बंगाल में तूफान खड़ा कर दिया। अंग्रेज़ी सरकार इस पत्र से बहुत परेशान थी। परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वह सम्पादक का पता नहीं लगा पाए। आखिर अनुमान के आधार पर अरविन्द घोष को गिरफ़्तार कर लिया। मुक़द्दमा चलाने के लिये सरकार को कोई प्रमाण नहीं मिला। गोरी सरकार ने तब एक घृणित चाल चली। उसन विपिनचन्द्र पाल की सत्यवादिता का अनुचित लाभ उठाना चाहा। यह सोचकर कि बड़े क्रान्तिकारी नेता पाल को 'वन्देमातरम्' के सम्पादक का अवश्य पता होगा, और यदि उन्हें अदालत में गवाह के रूप में बुला लिया जाये तो वे झूठ नहीं बोलेंगे, इस प्रकार सच सामने आ जायेगा। सरकार ने उनको गवाह के रूप में बुला लिया।

श्रीपाल अंग्रेज़ों की इस कूटनीति को समझते थे। जब उन्हें गवाही के लिए खड़ा किया गया तो उन्होंने कहा–

मैं इस विदेशी सरकार के सामने गवाही देना नहीं चाहता। मेरा विवेक इस बात की अनुमति नहीं देता।

सरकार की चाल धरी रह गई। अपमान से बचने के लिए अदालत ने गवाही न देने को 'अदालत की मानहानि' घोषित किया और विपिनचन्द्र पाल को जेल की सज़ा सुना दी। कथित अभियुक्त तो छूट गया किन्तु गवाह को सज़ा हो गई। ऐसा विचित्र था अंग्रेज़ों का न्याय।

6. लाला लाजपत राय

मेरे शरीर पर लाठी का एक-एक प्रहार अंग्रेज़ी शासन के कफ़न की एक-एक कील सिद्ध होगा ।

ये शब्द थे पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के, जो उन्होंने साइमन कमीशन के विरोध में अपने पर हुए लाठी चार्ज के समय अंतिम बार कहे थे । वास्तव में हुआ भी वैसा ही लालाजी के बलिदान से पंजाब ही क्या सारे भारत में क्रान्ति की ज्वाला इस प्रचण्ड रूप से धधकी कि आखिर अंग्रेज़ी हुकूमत उसमें जलकर खाक ही हो गई ।

जन-मन की यह श्रद्धा पाने के अधिकारी लालाजी का निर्माण धर्म की आधार भूमि पर हुआ था । उनके घर का वातावरण धार्मिक तो था ही, उन्हें स्वयं भी उसका अध्ययन करने की बड़ी जिज्ञासा थी । अपनी पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त वे रामायण, महाभारत अथवा गीता आदि कोई न कोई पुस्तक अवश्य पढ़ते और उसका तत्त्व समझने का प्रयत्न करते रहते थे । जिससे धीरे-धीरे उन्होंने धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

एक ओर वे साइमन कमीशन की बहिष्कार सभा में बोल रहे थे और दूसरी ओर उन पर लाठियों से प्रहार करती हुई पुलिस, कप्तान सेन्डर्स की आज्ञा का पालन कर रही थी । किन्तु धर्म के तत्त्व को ठीक-ठीक हृदयंगम किये हुए लालाजी प्रहार सहन करते हुए एक भाव से बोलते रहे और जब तक उनका भाषण समाप्त नहीं हो गया वे विचलित न हुए और अन्त में उपर्युक्त अन्तिम शब्द कहते हुए गिरकर मूर्च्छित हो गये । जब तक वे अपने कर्त्तव्य को पूरा न कर सके, लाठी का प्रकार उनके शरीर पर निष्फल ही होता रहा । ऐसा ज्ञात हो रहा था जैसे धर्म और धैर्य कवच बन कर उनकी रक्षा कर रहे थे । समय की पुकार पर जो अपने को न्योछावर कर देते हैं वही वास्तविक महापुरुष होते हैं । साधारण व्यक्ति किसी का दुःख-दर्द देखकर या तो अनुभूत ही नहीं करते अथवा उस अनुभूति को आई गई कर देते हैं । किन्तु

महान् व्यक्तित्व जिस पीड़ा को एक बार अनुभव कर लेते हैं उसे दूर करने में अपने सर्वस्व की बाजी लगा देते हैं ।

लालाजी के बलिदान में भारत में जो क्रान्ति का एक नवीन भूचाल आया था और समस्त जनमानस प्रचण्ड रूप से आन्दोलित हो उठा था, उसके पीछे उनकी निष्काम लोकसेवायें काम कर रही थीं । लगभग डेढ़ हज़ार रुपये मासिक की वकालत और बार-बार एसोसिएशन का सम्मानित अध्यक्ष पद छोड़ते हुए देर न लगी, जब राजस्थान, बिहार और उत्तर भारत में पड़े अकाल से पीड़ित मानवता की चीत्कारों ने मनुष्यता को आवाज़ दी ।

लालाजी ने दीन दुःखियों की क्या सेवा की इसका लेखा-जोखा कोई लेना चाहे तो पंजाब के तात्कालिक अनाथालयों और आश्रय-भवनों की गणना कर ले जो उनके लिये बनवाये थे और यदि उस समय का कोई बड़ा-बूढ़ा मिल जाये तो उससे पूछकर अनुमान लगा लें कि वे कितने क्षुधार्त बन्धुओं को ईसाई मिशनरियों के जाल से निकाल कर पंजाब लाये थे और उनके सहायता कोष के लिए फैली हुअई उनकी झोली कितनी बार भरी और खाली हुई थी ।

मानवता के लिये उनकी सेवा का यह पहला अवसर न था । उड़ीसा और मध्य-प्रदेश के दुर्भिक्ष ने उनकी परीक्षा ली, महाराष्ट्र की महामारी और कांगड़ा के भूकम्प ने उनकी दयालुता और दानवीरता को परखा । किन्तु दुर्देव का कोई भी कोप उनकी अखण्ड-सेवा भावना को थका न सका । अकाल पीड़ितों की भोजन व्यवस्था और भूकम्प के घायलों की दवा-दारू से लेकर महामारी के मारे हुए लोगों की सेवा सुश्रूषा करने में उन्होंने दिन-रात एक कर दिया । जब तक उस भयंकर अस्त-व्यस्त स्थिति पर उन्होंने काबू नहीं पा लिया बैठकर चैन की साँस नहीं ली । इस कार्य में उन्होंने कितने दिन लगाये और कितनी रातें बिना सोये बिताई इसकी संख्या तो वहीं दुःखी आत्मायें ही बतला सकती हैं जिनको उन्होंने सुख दिया ।

उनके हृदय में मानव का क्या मूल्य था और मानवता के लिए कितना दर्द था वह उनके उन महान् कार्यों से सहज ही आँका जा सकता है जो उन्होंने पददलित हरिजनों और समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के लिये किया थे। जिस हरिजनोद्धार आन्दोलन को गाँधीजी ने आगे बढ़ाया उसके जन्मदाता लाला लाजपतराय ही थे। उन्होंने हरिजनों के ज्ञानवर्धन के लिए 40,000 रुपये का नक़द दान करके शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की। यद्यपि उनका धर्मभीरू परिवार चली आ रही रूढ़ियों, परम्पराओं और कुरीतियों तक को यथावत मानने में ही विश्वास करता था तथापि उसे लालाजी की निस्पृह सुधार भावना से भरे इस क्रांतिकारी कार्य को मान्यता देनी ही पड़ी। संसार में अभी तक एसे बन्धन का आविष्कार नहीं हो सका है जो किसी सच्चे साहसी को कोई सत्कार्य करने से रोक सके।

जिस विद्या और ज्ञान ने उन्हें निष्काम सेवा का पुण्य प्रदान किया था। उसका प्रसाद जन-जन को बाँटने के लिए उन्होंने शिक्षा-संस्थाओं और विद्यालयों का जाल बिछा दिया। छोटी पाठशालाओं से लेकर रामकृष्ण हाई स्कूल और डी.ए.वी. कॉलेज जैसे बड़े-बड़े विद्या मन्दिरों की स्थापना उन्हीं के परिश्रम और पुरुषार्थ का फल है। उन्होंने केवल स्थापना ही नहीं कराई अपितु अन्य सारे काम करते हुए 25 वर्ष तक अवैतनिक रूप से अध्यापन और प्रबन्ध भी किया।

इस प्रकार इतनी लोकसेवा की साधना करने के बाद लालाजी एक तपस्वी का तेज लेकर काँग्रेस के माध्यम से विदेशी शासन की जड़ उखाड़ने के लिये राजनीति में उतरे। एक प्रकार से काँग्रेस अभी तक वाद-विवाद और प्रस्तावों तक ही सीमित थी। लालाजी के प्रवेश से उसमें नवजीवन का संचार हुआ। कौंसिल सुधार प्रस्ताव पर उनके प्रथम भाषण ने ही लोगों को अवगत करा दिया कि भारत की मोह-निद्रा भंग हो गई है और अब वह पूरी तरह चैतन्य हो चुका है। लालाजी की ओजस्विता से प्रेरित होकर मेज कुर्सी तक सीमित काँग्रेस ने भी अपना परिकर कसा तथा एक ऐसी करवट ली कि अंग्रेज़

साम्राज्यवादियों को अपशकुन होने लगे ।

स्वाभाविक था कि अंग्रेज़ी शासन काँग्रेस में जागते हुए ज्वलंत राष्ट्रीयता का कारण खोजता । उसने खोजा और लाला लाजपतराय के रूप में उस शिखा को पहचान लिया, जिसकी आलोक-रश्मियाँ भारतीय स्वतन्त्रता का पथ प्रशस्त कर रही थीं । बिहार के अकाल पीड़ितों की सेवा के समय अपनी तत्परता से जो लाला लाजपतराय सरकार के प्रशंसा पात्र बने थे वह अब उसकी आँख के कंटक बन गये । परन्तु वह कुछ कर सकने का अवसर न देखकर मन-मसोस कर रह गये । दहकते हुए अंगार को सहसा मुट्ठी में जकड़ लेने का उसे साहस न हुआ ।

अस्तु, उसने इस मूल अंगार और उसकी ऊष्मा से आग पकड़ते हुए बहुत-सी चिंगारियों पर पानी डालने के लिए इंग्लैंड की संसद् के समक्ष भारतीय जनता का पक्ष प्रस्तुत करने के लिए काँग्रेस को आमंखण दिया । निदान 1906 में एक शिष्टमंडल इंग्लैंड गया जिसमें लालाजी सम्मिलित थे । किन्तु आग जहाँ जायेगी गर्मी पैदा करेगी । लालाजी के तेजस्वी तर्कों और ओजस्वी भाषणों से इंग्लैंड के जनमत में हलचल पैदा हो गई । अस्तु, अंग्रेज़ी संसद् के काँग्रेस शिष्टमंडल को कोरा वापस कर दिया ।

इधर काँग्रेस के पुराने नेताओं ने लालाजी के नवीन क्रान्तिकारी कदमों के कारण अंग्रेज़ों से याचना में कुछ सुविधायें पा सकने की आशा को धूमिल होते देखकर उनके गर्म विचारों का विरोध करना आरम्भ कर दिया । जिससे काँग्रेस के नर्म और गर्म दो दल हो गये । लालाजी जब जेल से छूट कर आये ब उनका नाम काँग्रेस अध्यक्ष के लिये चुना गया परन्तु उन्होंने अस्वीकार कर संगठन रक्षा के लिए उदारता का परिचय दिया ।

1920 में विदेश से आते ही वे महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये । पंजाब के विदेशी बहिष्कार नेता के रूप में उनके प्रबल संघर्ष के फलस्वरूप पंजाब में अंग्रेज़ी राज्य के पैर हिलन लगे । सरकार

स्कूलों का बहिष्कार कर सारे नौजवान देश-सेवा में जुट गये । उनके समुचित विकास के लिए उन्होंने लाहौर में 'तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स' की उन्हीं दिनों स्थापना भी की । उनके इन्हीं क्रान्तिकारी कार्यों के फलस्वरूप ये फिर गिरफ्तार करके दो वर्ष के लिए कारगार भेज दिये गये ।

इसके पश्चात् आप स्वराज्य पार्टी में सम्मिलित हुये । नेशनल पार्टी की स्थापना करके हिन्दू महासभा की स्थापना कराई । यह सब कुछ होते हुए भी उनकी मौलिक क्रान्तिकारी भावना, ज्वलन्त देश-भक्ति और हिन्दू-धर्म भावना में किंचित अन्तर न आया । वे जिस दल अथवा सभा में गये उसे एक नवीन चेतना ही दी और आखिर अंग्रेज़ी हुकूमत ने कोई वश न देखकर उन्हें साइमन कमीशन की आड़ में शहीद करके अपने विनाश के बीज बो ही लिये । आजीवन, देश-विदेश, सभा-सोसाइटी समाज-सरकार जहाँ भी रहे लाला लाजपतराय ने एकनिष्ठ स्वदेश और समाज की सेवा की तथा देश की बलि-वेदी पर उत्सर्ग होकर भारत के इतिहास में सदा को अमर हो गये ।

7. श्याम जी कृष्ण वर्मा

सन् 1857 भारतीय इतिहास का अविस्मरणीय वर्ष। अंग्रेज़ी दासता के फंदे को भारतमाता के गले से उतार फैंकने के लिए हज़ारों क्रान्तिकारियों ने स्वधर्म और स्वराज्य की पावन भावनाओं से ओतप्रोत होकर स्वातंत्र्य लक्ष्मी को रिझाने हेतु अरिदल दमन और स्वतंत्रता की रूठी रमणी को रिझाने के लिए सर्वस्व समर्पण का महान् अनुष्ठान आरम्भ किया था। सारा देश स्वतंत्रता के दीवानों के रणनाद से गूंज उठा था। गुम हुई आज़ादी की कीमत को पहचान लाखों नर-नारी सीने तान कर अंग्रेज़ी सत्ता से दो-दो हाथ करने के लिए मैदान में कूद पड़े थे।

इसी ऐतिहासिक वर्ष में 4.10.1857 को गुजरात राज्य के कच्छ जिले के मांडवी ग्राम में श्रीकृष्ण जी भंसाली के यहाँ एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया। कृष्ण जी ने अपने पुत्र का नाम रखा श्यामजी। कृष्ण जी एक नितांत साधारण स्थिति के गृहस्थ थे। मेहनत मजदूरी करके ही वे अपने परिवार का पालन पोषण करते थे। बाल्यकाल में ही श्यामजी की माता प्रभु को प्यारी हो गई। वह माता का वात्सल्य अधिक समय तक न पा सके और उन्हें पालने पोसने का उत्तरदायित्व उनकी नानी जी पर आ पड़ा। श्याम जी की आरम्भिक शिक्षा दीक्षा उनके ग्राम में ही हुई। कुछ दिनों के उपरान्त जब उनकी आयु 12 वर्ष की ही थी वे एक संन्यासिनी माता हरिकुंवर जी के साथ कच्छ चले गए। वहाँ इस संन्यासिनी देवी ने उन्हें संस्कृत का कुछ अभ्यास कराया और अपनी यात्रा की समाप्ति के उपरान्त उन्हें संस्कृत की कुछ पुस्तकें देकर घर लौटा दिया।

श्याम जी मांडवी से तो लौट आए परन्तु उन्होंने संस्कृत के अध्ययन करने का संकल्प भी ग्रहण कर लिया। अन्ततः जहाँ वहाँ राह की उक्ति चरितार्थ हुई। संस्कृत के प्रति उनकी लगन से प्रभावित होकर कच्छ के एक व्यापारी सेठ मथुरादास भाटिया श्यामजी को अपने साथ बम्बई लिवा ले गये। क्योंकि वे इस बालक द्वारा संस्कृत का सुमधुर कंठ से उच्चारण करने से नितांत प्रभावित हुए थे। बम्बई में श्यामजी को उन्होंने विल्सन हाई स्कूल में

प्रवेश दिला दिया और साथ ही संस्कृत भाषा के विद्वान् पं. विश्वनाथ शास्त्री की संस्कृत पाठशाला में भी उनके पढ़ने की व्यवस्था करा दी। इस प्रकार श्याम जी अंग्रेज़ी और संस्कृत दोनों भाषाओं में निपुण होते गए।

गोकुलदास काहनदास पारिख छात्रवृत्ति प्राप्त हो जाने के फलस्वरूप वह बाद में एल्फिस्टन स्कूल में भी प्रवेश पा गए। इस विद्यालय में भी प्रतिभा सम्पन्न श्यामजी अपने शिक्षकों के नितांत प्रिय शिष्य हो गए थे। उनके साथी भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। यहीं उनकी मित्रता एक श्रीमंत श्री छबीलदास के पुत्र रामदास से हो गई थी। छबीलदास जी भी श्याम जी की प्रतिभा से प्रभावित हुए बिना न रह पाए और उन्होंने अपनी 13 वर्षीय पुत्री भानुमती का विवाह 1875 ई. में श्री श्याम जी से कर दिया। उस समय श्याम जी की आयु 18 वर्ष की ही थी।

उन्हीं दिनों महर्षि दयानन्द भी बम्बई में थे और उनके धाराप्रवाह संस्कृत भाषणों को बम्बई नगर में चतुर्दिक् धूम मची हुई थी। संस्कृत अनुरागी श्याम जी भी 12 दिन देव दयानन्द के दर्शनार्थ पहुँचे और उस महान् आत्मा के प्रथम सम्पर्क में ही वे प्रभावित हो उठे। उन्होंने महर्षि का शिष्यत्व तो स्वीकार किया और साथ ही आर्यसमाज की सदस्यता भी। वेदों के अभ्यास की ओर भी वे अनुरक्त हो गए। 1877 के जनवरी मास से 1878 के मार्च मास तक तो श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपना पूर्ण समय आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में ही लगाया। आर्य समाज के प्रचारक के रूप में श्याम जी ने नासिक और पूना में भी अपनी कीर्ति पताका फहराई। मूर्तिपूजा, विधवा विवाह, विदेश यात्रा के संबंध में उन्होंने अपने भाषण में जो तर्कसम्मत विचार प्रस्तुत किए उनसे तो पूना का पंडित वर्ग भी उनकी विद्वत्ता का लोहा मान गया और न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे ने भी श्याम जी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने में संकोच न दिखाया।

जिन दिनों श्याम जी कृष्ण वर्मा देव दयानन्द द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुगमन करते हुए नितांत निर्भीकता सहित वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में संलग्न थे, उन्हीं दिनों (1878 ई. के मध्य) ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के श्री मोनियर विलियम्स भारत आए। पूना में उनका

व्याख्यान सुनने के लिए श्याम जी भी पहुँचे। उसी सभा में श्याम जी का धाराप्रवाह संस्कृत भाषण हुआ। विलियम्स भी उनसे प्रभावित हुए बिना न रहे। उसी समय उन्हें पूना के सुप्रसिद्ध लोकहितवादी रायबहादुर गोपाल हरि देशमुख ने उच्च शिक्षा हेतु विदेश गमन की प्रेरणा दी। फलस्वरूप मार्च 1879 में श्याम जी ने इंग्लैंड प्रस्थान कर दिया और वे अप्रैल 1879 ई. में ऑक्सफोर्ड जा पहुँचे। वहाँ प्रो. विलियम्स से तो उन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त हो ही रही थी, उनकी विद्वत्ता और ख्याति से प्रभावित होकर कच्छ राज्य ने भी उन्हें 100 पौंड वार्षिक की छात्रवृत्ति देने की घोषणा कर दी। श्याम जी ने भी इस स्थिति का लाभ उठाकर अपनी योग्यता में वृद्धि की दृष्टि से कोई कोर कसर न उठा रखी।

श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इंग्लैंड में रहते हुए भी महर्षि दयानन्द के पावन संदेश को सतत् स्मरण रखा और संस्कृत भाषा, वेदों एवं उपनिषदों आदि पर व्याख्यान भी देते रहे। उन्हें अंग्रेज़ी भाषा पर भी पूर्णाधिकार प्राप्त हो गया था और संस्कृत में तो प्रवीणता प्राप्त थी ही। उन दिनों पाश्चात्य जगत् में संस्कृत भाषा के प्रति अनुरक्ति और कौतूहल भी बढ़ता ही जा रहा था। अतएव जब किसी पाश्चात्य विद्वान् को संस्कृत भाषा के संबंध में किसी कठिनाई का आभास होता तो वह भी श्याम जी के पास आता और उपनी जिज्ञासा को शांत करने का सुख पाता।

सन् 1881 ई. में बर्लिन में तथा 1883 ई. में हालैण्ड के लाइडन नगर में आयोजित हुए प्राच्य विद्या सम्मेलनों में श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भारत का प्रतिनिधित्व किया। 1883 ई. में उन्हें बी.ए. की उपाधि मिली। उसी वर्ष दिसम्बर मास में ख्याति और यश को अर्जित करने वाला यह कर्मयोगी अपनी मातृभूमि भारत वापस लौट आया। श्याम जी 28 वर्ष की आयु में ही बैरिस्टर बनकर स्वदेश पधारे थे। परन्तु कुछ समय ही वे भारत में रहे और 1884 ई. में अपनी धर्मपत्नी भानुमती को साथ लेकर पुनः इंग्लैंड प्रस्थान कर गए। वहाँ नवम्बर 1887 ई. में इन्टर टैम्पल से उन्होंने बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त कर ली। अपनी पत्नी भानुमती को साथ लेकर यूरोप के अनेक देशों का भ्रमण किया। स्वतंत्र देशों के इस पर्यटन ने वर्मा जी के हृदय में स्वदेश की स्वतंत्रता

की भावना को और अधिक बढ़ाया । उन्हें इस बात का पूर्णतः विश्वास हो गया कि पुण्य भूमि भारत का अतीत चाहे कितना ही वैभवशाली क्यों न रहा हो, हमारी संस्कृति, साहित्य एवं सभ्यता चाहे कितनी भी समुन्नत क्यों न रही हो परन्तु जब तक भारत पराधीनता के पाश में जकड़ा रहेगा वह विश्व में सम्मान प्राप्त करने में असफल रहेगा । उन्होंने स्वदेश को ही अपनी कर्मभूमि बनन का निश्चय किया और व 1885 ई. में पुनः भारत लौट आए और 19 जनवरी को उन्होंने अपना पंजीकरण बम्बई हाईकोर्ट में बैरिस्टर के रूप में करा लिया ।

उनकका व्यवसाय अल्पावधि में ही खूब चमका । उनकी योग्यता की धाक चतुर्दिक व्याप्त होने लगी । उन्हें रतलाम राज्य के शासक ने अपने यहाँ दीवान नियुक्त कर दिया । वहाँ दो वर्ष तक इस पद पर कार्य करने के उपरांत उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण स्वेच्छया इस पद का परित्याग कर दिया और वहाँ से बम्बई एवं तदुपरांत अजमेर चले गये । अजमेर में भी आपने वकालत आरम्भ की । प्रचंड मेधाशक्ति, विधि मर्मज्ञता के कारण यहाँ भी उनका व्यवसाय खूब चमका । यहाँ वकालत करते हुए ही उनको 1893 ई. को जूनागढ़ में इसी पद पर कार्य करने का अवसर मिला । वहाँ भी उनका मन न जमा तो वह पुनः अजमेर चले आए । वहाँ उन्होंने विधिज्ञ के नाते कार्य करने के अतिरिक्त ऊन के तीन कारखाने एवं एक प्रेस भी स्थापित कर उन्होंने व्यावसायिक कुशलता का परिचय दिया । इसी प्रकार उनकी अर्जित धनराशि बढ़ती ही गई । अजमेर में स्वामी जी द्वारा संस्थापित परोपकारिणी सभा के भी वह आजीवन सदस्य बन गए ।

महर्षि दयानन्द ने उनके हृदय में स्वराज्य और स्वधर्म के प्रति जो वरेण्य भाव सरसाए थे वे भारत में विद्यमान स्थितियों से और भी अधिक प्रबल हो उठे थे । वस्तुतः वे बम्बई में रहते हुए ही क्रान्तिकारी विचारों की निर्भीकता सहित अभिव्यक्ति करने लग गए थे । उन्हीं दिनों ऐसी कई घटनाएं भी घटित हुई कि श्याम जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि भारत भूमि पुनः सन् 1857 सरीखे स्वातन्त्र्य समर की सिद्धता के लिए सक्रिय हो रही है । उन्हें विश्वास हो गया कि वे क्रांति यज्ञ की ज्वाला को धधकाने का अपना

संकल्पित कार्य भारत में अधिक समय तक नहीं कर पाएंगे और अंग्रेज़ सत्ता उनको बंदी बना लेगी। उन्हें बंदी बनाए जाने से भय नहीं था। वे तो इस बात से चिन्तित थे कि यदि वह गिरफ़्तार हो गये तो भारतीय स्वातन्त्र्य समर में वे जो अपनी भूमिका निभाना चाहते थे, उसे न निभा पाएंगे। अतः अंग्रेज़ी राज्य सत्ता रूपी सिंह को उसकी मांद में ही जाकर चुनौती देने का इस भारतीय नर सिंह ने संकल्प ग्रहण कर लन्दन के लिए प्रस्थान कर दिया। भारत में उनका परिचय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा क्रान्ति की अग्नि शिखा को धधकाने के लिए प्रवृत्त अनेक युवकों से भी हो चुका था।

इंग्लैंड पहुँच कर श्याम जी ने अपनी सुविचारित कार्य प्रणाली के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया। वे वहाँ टैम्पल के रेजिडेन्शियल चैम्बर में रहने लगे थे। 1897 ई. में श्याम जी लन्दन पहुँचे थे। वे अपने कार्य में प्रवृत्त रहे और भारत में अंग्रेज़ी राज्यसत्ता द्वारा किए जा रहे अत्याचारों से विश्व की जनता को अवगत कराने के लिए एक ठोस पग के रूप में उसने 1905 ई. में 'इंडियन सोशियोलोजिस्ट' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। उल्लेखनीय है कि 1904 ई. में बंग भंग विरोधी आन्दोलन ने भारत की सुप्त आत्मा में नवजागरण का शंखनाद कर दिया था। इंडियन सोशियोलोजिस्ट को स्वतंत्र और राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सुधार का प्रवक्ता घोषित किय गया था। शीघ्र ही वह पत्र अत्यधिक लोकप्रिय हो गया था। इसी वर्ष श्याम जी ने लंदन के हाईगेट क्षेत्र में एक मकान भी खरीदा और इंडियन होम रूल नामक एक संगठन की भी स्थापना कर दी। इस संस्था का उद्देश्य था—

भारत में होमरूल की स्थापना, इसकी स्थापनार्थ इंग्लैंड में व्यावहारिक कार्य करना एवं भारतीय स्वतंत्रता और एकता का प्रचार।

इस संस्था का अध्यक्ष पद स्वयं श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने संभाला तो श्री जे.सी. मुखर्जी इसके मंत्री नियुक्त किए गए। सरदारसिंह राणा, सुहरावर्दी एवं श्री जे.एम. पारिख आदि इसके उपाध्यक्ष थे। इण्डियन होम रूल सोसाइटी ने अपने निश्चय के अनुसार एक भवन का भी लंदन में निर्माण कराया। इसे ही इंडिया हाउस का नाम दिया गया। भरतीय छात्रों के लिए स्थापित इस भवन का उद्घाटन अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी दल के नेता श्री

हैंडरसन ने सम्पन्न किया । उद्घाटन समारोह में अनेक आयरिश क्रान्तिकारी भी उपस्थित थे तथा अनेक मुख्य भारतीय छात्र भी । यह उद्घाटन समारोह 1.7.1905 ई. को सम्पन्न हुआ था ।

बंगाल में चल रहे आन्दोलन के सिलसिले में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बन्दी बना लिए गए थे । वर्मा जी ने इस गिरफ़्तारी के विरुद्ध 4.5.1906 ई. को इंडिया हाउस में ही एक सभा आयोजित की । इसमें देवता स्वरूप भाई परमानन्द एवं श्री विट्ठल भाई पटेल सरीखे राष्ट्रभक्त भी शामिल हुए । लोकमान्य तिलक के आग्रह पर श्याम जी ने स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर को शिवाजी छात्रवृत्ति प्रदान कर इंग्लैंड में आकर विद्याध्ययन करने का अवसर प्रदान किया था । आग्नेय जीवनव्रती वीर सावरकर से श्याम जी भी प्रभावित हुए बिना न रह पाए और शीघ्र ही इन दोनों में अत्यधिक घनिष्ठता स्थापित हो गई ।

इंडियन सोशियालोजिस्ट में प्रकाशित वीर सावरकर के ओजपूर्ण लेख वहाँ रहने वाले भारतीयों के शीतल से हुए रक्त को भी गर्माने लगे और देचाते ही देखते इंडिया हाउस स्वातन्त्र्य संग्राम में अवतरित होने के लिए कृत संकल्प भारतीय जवांमर्दों का एक मुख्य केन्द्र बन गया । वीर सावरकर में श्याम जी को अपना ही प्रतिरूप दृष्टिगोचर हुआ करता था । इस प्रकार श्याम जी कृष्ण वर्मा एवं स्वातन्त्र्य वीर सावरकर दो शरीर और एक आत्मा हो गए थे ।

इंडिया हाउस में बैठकर ही स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने अपने महान् ग्रंथ **1857 का भारतीय स्वातन्त्र्य** समर की रचना की । यही वह अमर ग्रंथ था जो प्रकाशन से पूर्व ही अंग्रेज़ों द्वारा जब्त घोषित कर दिया गया । परन्तु इन प्रतिबंधों के बावजूद श्यामजी कृष्ण वर्मा के सहयोगियों मैडम कामा आदि ने इसके प्रकाशन के लिये प्रत्येक प्रकार की आपदा और बाधा को झेलकर भी इसके प्रकाशन का संकल्प पूर्ण कर दिखाया । लाला हरदयाल भी इंग्लैंड में उच्च शिक्षा की प्राप्ति हेतु आए थे । वे वहाँ वीर सावरकर से प्रथम भेंट में ही क्रांतिकारी बन गए और श्याम जी कृष्ण वर्मा के भी मुख्य सहयोगी सिद्ध हुए । सेनापति पांडुरंग महादेव बापट भी उन्हीं दिनों लन्दन पहुँचे और इंडिया हाउस को ही उन्होंने भी अपना क्रियास्थल बनाया ।

भारत में अंग्रेज़ सरकार का देशभक्तों के विरुद्ध प्रकोप भी पराकाष्ठा पर पहुँच रहा था। सुप्रसिद्ध राष्ट्रभक्त और आर्यसमाज के आस्थावान् अनुयायी लाला लाजपतराय तथा सरदार भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह जी को अंग्रेज़ी सरकार ने देश से निर्वासित कर दिया। अंग्रेज़ी राज्यसत्ता के इस कार्य से श्यामजी कृष्ण वर्मा अत्यधिक क्षुब्ध हुए। इंडिया हाउस में इस संबंध में एक सभा आयोजित की गई, जिसमें लन्दन स्थित सभी मुख्य भारतीय उपस्थित हुए। अंग्रेज़ सरकार श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा अन्य भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा किये जा रहे ऐसे आयोजन से क्षुब्ध होती जा रही थी। फिर भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा 8.5.1908 ई. को इंडिया हाउस में ही अंग्रेज़ी राज्यसत्ता के विरुद्ध भारत में 1857 ई. में हुए प्रथम स्वाधीनता संग्राम की स्वर्ण जयंती भी धूमधाम से सम्पन्न हुई। इस आयोजन के बाद अंग्रेज़ों का श्याम जी कृष्ण वर्मा आदि के विरुद्ध क्रोध और भी अधिक उभर उठा।

अंग्रेज़ी सरकार ने इस प्रकोप को दृष्टिगत रखते हुए श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इस तथ्य को भांप लिया कि अब यदि वह इंग्लैंड में रहे तो उनको बन्दी बना लिया जायेगा। श्याम जी बन्दी वास से घबराने वालों में कदापि नहीं थे, परन्तु उन्होंने जिस महान् कार्य को आरम्भ किया था, संभावित बन्दीवास उसमें बाधक सिद्ध हो सकता था। अतःएव उन्होंने लन्दन से प्रस्थान कर पेरिस को अपना केन्द्र बनाया। ''इंडियन सोशियालोजिस्ट'' का प्रकाशन भी वहीं से आरम्भ हो गया। लंदन स्थित इंडिया हाउस की गतिविधियों का सम्पूर्ण भार स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने संभाल लिया था।

उन्हीं दिनों श्री खुदीराम बोस ने किंग्सफोड की हत्या का प्रयास किया। श्यामजी ने भी अपने पत्र के माध्यम से क्रांतिकारी लहर को समर्थन दिया। इसी संदर्भ में सितम्बर, 1908 में इंडियन सोशियालोजिस्ट में ''डायनामाइट का नीतिशास्त्र एवं भारत में अंग्रेज़ तानाशाह'' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ उसमें भी क्रान्तिकारी गतिविधियों को न्यायसंगत सिद्ध किया गया था। इस प्रकार श्याम जी कृष्ण वर्मा क्रान्ति की ज्वाला को धधका कर भारतीय स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व त्याग और महानतम् बलिदान की प्रेरणा भी देश

और विदेशों में भारतीय युवकों को प्रदान कर रहे थे ।

1.7.1909 ई. इंडिया हाउस में रहकर क्रान्तिकारी की दीक्षा ग्रहण करने वाले महान् राष्ट्रभक्त एवं हिन्दुत्व तथा आर्य संस्कृति के प्रति अडिग आस्था रखने वाले युवक मदन लाल ढींगरा ने लन्दन की इम्पीरियल इंस्टीच्यूट के जहांगीर हाल में कई भारतीयों की हत्या के लिए उत्तरदायी कर्जन वायली की हत्या कर दी । इंग्लैंड के कई पत्रों ने इस हत्याकांड से श्रीश्याम जी कृष्ण वर्मा का भी सम्बन्ध जोड़ा । वर्मा जी इस आलोचना से घबराने वालों में से नहीं थे । अतएव उन्होंने अपने पत्र में मदनलाल ढींगरा की स्पष्ट शब्दों में प्रशंसा की । इतना ही नहीं अपितु भारत माता की स्वतंत्रता हेतु अपना बलिदान चढ़ाने के लिए संकल्पबद्ध हुए इसी साहसी युवक के नाम पर उन्होंने छात्रवृत्ति देने की भी घोषणा कर दी । श्री वर्मा ने अपने पत्र के माध्यम से ही नहीं अपितु कई विदेशी पत्रों में भी भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में लेख लिखकर अपने अभियान को गतिमान् किया ।

1912 में जब चीन में लोकतंत्र की स्थापना हुई तो श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भारतीय जनता को भी चीन के उदाहरण से प्रेरणा लेकर मातृभूमि की स्वतन्त्रत हेतु सक्रिय होने का आह्वान किया । इसी वर्ष के अन्तिम दिनों में दिल्ली में लार्ड हार्डिंग के जलूस पर क्रान्तिकारियों द्वारा बम फेंके जाने का कांड घटित होने पर अंग्रेज़ी समाचार पत्रों ने श्री वर्मा को भी इससे संबंधित बताने में ही अपनी कार्यकुशलता समझी । परन्तु इस सारे प्रचार के बावजूद श्री वर्मा कर्मक्षेत्र में डटे रहे और 1913 में उन्होंने लन्दन ही नहीं अपितु स्विटजरलैंड, इटली, जर्मनी, मिस्र आदि देशों में साम्राज्यवाद विरोधी समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन से विदेशों को भी अवगत कराया ।

1914 ई. अप्रैल मास इंग्लैंड के सम्राट् जार्ज पंचम का पेरिस आगमन हुआ । उनका यहाँ आना प्रवासी क्रान्तिकारियों के लिए एक प्रकार की आपदा बन गया, क्योंकि उसके फलस्वरूप इंग्लैंड और फ्रांस के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गये । परिणामतः फ्रांस सरकार ने अंग्रेज़ों के संकेत पर श्याम जी कृष्ण वर्मा को ''राजद्रोही'' घोषित कर दिया । अतः एव अवसर पाते ही श्री

वर्मा फ्रांस से प्रस्थान कर स्विटजरलैंड जा पहुँचे । परन्तु वहाँ की सरकार ने भी उन पर यह प्रतिबंध लगा दिया कि ''वह राजनीति से सर्वथा अलिप्त रहे ।'' स्थितियों के वशीभूत श्या जी ने यह आश्वासन तो अधिकारियों को दे दिया था परन्तु जिनेवा में रहकर भी वे विदेशों में सक्रिय प्रमुख क्रान्तिकारियों लाला हरदयाल, पिल्लै, चट्टोपाध्याय आदि से सम्पर्क बनाए रहे । इतना ही नहीं अपितु उन्होंने विदेशों से भारतीय क्रान्तिकारियों को शस्त्रास्त्र भिजवाने में भी सहयोग किया ।

प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ तो जिनेवा में उन्होंने सोशियालोजिस्ट का प्रकाशन पुनः आरम्भ कर दिया । 1923 तक वे इसे चलाते रहे । परन्तु जब वृद्धावस्था ने उनके नेत्रों की ज्योति मंद कर दी तो क्रान्ति की ज्वाला धधकाने वाला यह पत्र भी बंद हो गया । इसके साथ ही अनेक साथी होने का दम भरने वाले ही जब दगा दे गए तो वर्मा जी भी निराश और हताश हो गए । जीवन के ये अंतिम दिन भारतीय स्वतन्त्रता के इस दीवाने को जिनेवा में निराशा के ही आलम में गुजारने पड़े ।

अन्ततः 31.3.1930 को सायं 6 बजे भारत माता के इस महान् सपूत का निधन हो गया । विधि की विडम्बना की जो महान् राष्ट्रभक्त सैकड़ों ही नहीं अपितु हज़ारों राष्ट्रभक्तों का प्रेरणास्रोत था, जीवन की अन्तिम घड़ी में सर्वथा एकाकी ही था । उस समय उनकी धर्मपत्नी भानुमति ही उनके पास थी । निधन के उपरांत इस प्रातः स्मरणीय महापुरुष की अन्त्येष्टि पूर्ण वैदि पद्धति से सम्पन्न कराई गई इस प्रकार एक दीप बुझ गया परन्तु राष्ट्रभक्तों का पथ आलोकित कर गया ।

8. मदन लाल धीगड़ा

मदन लाल धीगड़ा अमृतसर के रहने वाले थे। घर से अच्छे थे। बी.ए. पास कर पढ़ने के लिए इंग्लैंड चले गये। कहा जाता है कि वहाँ वह कुछ ऐय्याशी में फंस गये। यह बात यकीन से नहीं कही जा सकती, लेकिन यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। उनका मन बड़ा रसिक व भावुक था इस बात का प्रमाण भी मिलता है। इंग्लैंड के खुफिया विभाग (Scotland Yard) के प्रसिद्ध जासूस श्री ई.टी. वुडहाल ने यूनियन जैक (Union Jack) नामक साप्ताहिक अखबार में अपनी डायरी छापी थी। मार्च, 1925 के अंक में उन्होंने श्री मदन लाल ढींगरा का हाल लिखा है। यह जासूस उनके पीछे लगाया गया था। वह लिखता है–

Dhingra was an extraoridnary man. Dhingra's passion for flowes was remarkable.

ढींगरा एक असाधारण व्यक्ति था। ढींगरा का फूलों के प्रति ज़बरदस्त लगावा था।

आगे जाकर उन्होंने लिखा है कि वेबाग़ के किसी सुन्दर कोने में जाकर बैठ जाते थे और घंटों तक फूलों को एक कवि की तरह मस्त होकर निहारते रहते और कभी उनकी आंखों से बड़ी तेज चमक कौंध उठती थी। उसी चमक को देखकर ई.टी. वुडहाल उस्ताद सिकलाहिन आगे लिखता है–

There is a man to keep an eye on. He will do some thing deseparate some day.

उस व्यक्ति पर आंख रखनी चाहिए। किसी न किसी दिन वह कुछ धमाका करेगा, खैर।

बात कर रहे थे कि शायद ऐय्याशी में फंस गये थे। उस कहानी के आगे यों है कि फिर स्वदेशी आन्दोलन का असर इंग्लैंड तक भी पहुँचा और जाते ही श्री सावरकर ने इण्डियन हाउस नामक सभा खोल दी। मदनलाल भी उसके सदस्य बने। इधर हिन्दुस्तान में खुले आन्दोलन को दबाने के कारण युग पलट लोगों ने खुफिया सोसाइटियां स्थापित कर लीं। यहाँ तक कि

1908 में अलीपुर की साजिश का मुक़द्दमा बन गया। श्री कन्हाई और सत्येन्द्रनाथ को फांसी मिल गई थी। ये खबर इंग्लैंड में भी पहुँची और इन गर्म नौजवानों में आग लग गई। कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक परामर्श करते रहे।

अगले दिन से ढींगरा फिर इण्डियन हाउस, सावरकर वाली सभा में नहीं गये और भारतीय विद्यार्थियों और विशेष खुफिया पुलिस का प्रबन्ध करने वाले और उनकी छोटी-मोटी आज़ादी को कुचलने वाले सर कर्जन वाचली जो कि Secretary of State for India के एड. डी. कैंप Aid-di-camp थे, द्वारा चलाई हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की सभा में जा शामिल हुए। यह देखकर इण्डियन हाउस वाले लड़कों को बड़ा जोश आया और उन्होंने उन्हें देशघातक, देशद्रोही तक कहना शुरू कर दिया, लेकिन उनका गुस्सा भी तो सावरकर ने यह कहकर शान्त किया कि आखिर उन्होंने हमारी सभा को चलाने के लिए भी तो सर तोड़ प्रयत्न किया था और उनकी मेहनत के फलस्वरूप ही हमारी सभा चल रही है, इसलिए हमें उनका धन्यवाद करना चाहिए। खैर कुछ दिन तो चुपचाप गुजर गये।

1.7.1909 को इम्पीरियल इंस्टीच्यूट के जहांगीर हॉल में एक बैठक थी। सर कर्जन वायली भी वहाँ गये हुए थे। वे दो और लोगों से बातें कर रह थे कि अचानक ढींगरा ने पिस्तौल निकालकर उनके मुँह की ओर तान दी। कर्जन साहब की डर के मारे चीख निकल गई लेकिन कोई इंतजाम होने से पहले ही मदनलाल ढींगरा ने दो गोलियाँ उनके सीने में मारकर उन्हें सदा की नींद सुला दिया। फिर कुछ संघर्ष के बाद वे पकड़े गये तो बस फिर क्या था? दुनियाभर में सनसनी मच गई। सब लोग उन्हें जी-भरकर गालियाँ देने लगे। उनके पिता ने पंजाब से तार भेजकर कहा कि ऐसे बागी, विद्रोही और हत्यारे आदमी को मैं अपना पुत्र मानने से इन्कार करता हूँ। भारतवासियों ने बड़ी बैठकें की। बड़े-बड़े भाषण हुए। बड़े-बड़े प्रस्ताव पास हुए। सब उनकी निन्दा में, परन्तु उस समय एक वीर सावरकर थे, जिन्होंने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया।

पहले तो उनके खिलाफ प्रस्ताव न पास होने देने के लिए यह बहाना

पेश किया कि अभी तक उन पर मुक़द्दमा चल रहा है और हम उन्हें दोषी नहीं कह सकते। आखिर में जब इस प्रस्ताव पर वोट लेने लगे तो सभा के अध्यक्ष श्री विपिनचन्द्र पाल यह कह करे थे क्या यह सभी की सर्वसम्मति से पास समझा जाये, तो सावरकर साहब उठ खड़े हुए और अपने व्याख्यान शुरू कर दिया। इतने में ही एक अंग्रेज़ ने इनके मुँह पर घूंसा मार दिया और कहा—"Look ! How straight the English first goesa! देखा, अंग्रेज़ी घूंसा कैसे ठिकाने पर पड़ता है।'' अभी वह कह ही रहा था कि एक नौजवन ने उस अंग्रेज़ के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा—"Look! how statight the Indian Club goesa! देखा, यारों का हिन्दुस्तानी घूंसा कैसे ठिकाने पर पड़ता है।'' शोर मच गया। बैठक बीच में छूट गई। प्रस्ताव भी ऐसे ही रह गया, खैर।

मुक़द्दमा चल रहा था। मदनलाल बड़े खुश थे। बड़े शान्त थे। सामने दर पर मौत खड़ी देखकर भी वे मुस्करा रहे थे। निर्भय थे। आह! वे वीर विद्रोही थे। उन्होंने जो बयान दिया व उनकी नेक-दिली, उनकी देशभक्ति और योग्यता का बड़ा भारी सबूत है। हम उनके ही शब्दों में कह देते हैं। यह 12 अगस्त के छपा था—

I admit the other day, I attempted to shed blood as an humble revenge for the inguman hangings and deportations of patriotic Indian youth. In the attempt have consulted none but my own conscience, I have conspired with none but my duty.

I believe that a nation held down by foreign baynot is in a perpetual state of war. Since open battle is rendered impossible to disarmed races. I attacked by surprise, since guns were denied to me I drew forth my postol and fired.

As an Hindu, I fell that wrong to my country is insult to God. Her cause is the cause of Shri Rama, her service is the service of Shri Krishna. Poor in wealth and intellect, a son like myself has nothing else to offer but his own blood, and so I have save sacrificed the same on her alter.

The only lesson required in India at presents is to learn how to die, and the only way to teach it is by dying ourselves.

Therefore! die and I glory in my martydom.

This war will continue, as long as the Hindu and English race last if this present unnatural relation does not cease.

My only prayer to God is– May I be reborn of the same mother and may I readie in the same secred cause .Till the cause is successful, and she stanos free for the good of humanity and to the glory of Good. Vande Matram.

मैं मानता हूँ कि मैंने उस दिन अंग्रेज़ का खून किया और कहता हूँ कि यह उन निर्दयता भरी सज़ाओं का मामूली-सा बदला है जो कि हिन्दुस्तानी देशभक्त नौजवानों को फाँसी और कालेपानी की दी गई है । मैंने इस काम में अपने आत्मा के अतिरिक्त किसी और की सलाह नहीं ली । अपने फर्ज़ के सिवा किसी से साजिश नहीं की ।

मेरा विश्वास है कि एक राष्ट्र जिसे विदेशी लोगों ने बंदूकों से दबाया हो वह सदा युद्ध की स्थिति में होता है और चूंकि हथियार छीनकर खुली लड़ाई असम्भव बना दी जाती है, मैंने छिपकर बिना बताए आक्रमण किया है । क्योंकि हमें बन्दूकें रखने से मना किया जाता है, इसलिए मैंने पिस्तोल खींच लिया और चला दिया ।

मैं एक हिन्दू के रूप में समझता हूँ कि मेरे देश के साथ किया गया अन्याय ईश्वर का अपमान है, क्योंकि देश की पूजा श्री रामचन्द्र जी की पूजा है और देश की सेवा श्रीरामचन्द्र की सेवा है ।

एक ग़रीब और मूर्ख मेरे जैसे नौजवान के पास अपनी माता की सेवा में भेंट करने के लिए अपने रक्त के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? सो मैंने अपना रक्त माता के चरणों पर चढ़ाया है ।

इस समय यदि हिन्दुस्तान को किसी सबक की जरूरत है तो यह है कि मरना कैसे चाहिये? और इसे सिखाने का तरीका यह है कि हम स्वयं मर कर दिखायें । इसीलिए मैं मर रहा हूँ । इसीलिए मुबारक हो शहीदाना मौत ।

यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ दो राष्ट्र रहेंगे और इनका वह अस्वाभाविक गठबन्धन बना रहेगा मेरी ईश्वर के आगे यही प्रार्थना है कि मैं फिर इसी माँ की गोद में जन्म लूँ और जब तक वह

स्वतन्त्र न हो जाए और मानव समाज की पूर्ण सेवा और उन्नति योग्य न बन जाये, मैं यहीं जन्मता रहूँ और मरता रहूँ—वन्दे मातरम् ।

16.8.1909 का दिन भी इतिहास में याद रहेगा । इंग्लैंड में हिन्दुस्तानी युग पलट पार्टी की आवाज़ गुंजाने वाला ढींगरा वीर अपनी मतवाली चाल चलता हुआ तख्ते पर जा चढ़ा था । श्रीमती एग्निस स्मेंडले एक जगह इस घटना का जिक्र करती हुई लिखती हैं—

He walked to the sacaffoled with his head high and shook of hands of those who offered to support him, saying that he was not afraid of death.

आह ! सहारा देकर ले जाने वाले व्यक्तियों के हाथ पीछे झटककर वह कहने लगा—मैं मौत से नहीं डरता । अहा ! धन्य है मृत्युंजय !

As he stood on the sacaffoled he was asked if he had a last word to say. He answered? Vande Matram.

माँ से इतना प्यार ! फाँसी के तख्ते पर खड़े हुए से पूछा जाता है—कुछ कहना चाहते हो ? तो उत्तर मिलता है 'वन्दे मातरम्' माँ ! भारत माँ, तुम्हें नमस्कार ! वह वीर फाँसी पर लटक गया और उसकी लाश भी भीतर ही दफ़ना दी गई और हिन्दुस्तानियों को उसकी दाह क्रिया आदि कराने की इज़ाज़त नहीं दी गई । धन्य था वह वीर । धन्य है उसकी याद ! भारत देश के अमूल्य हीरे को बारम्बार नमस्कार ।

9. भाई बालमुकुन्द

धर्मोन्माद के समक्ष अपना गर्वोन्नत भाल उठाकर स्वधर्म हेतु शीश वारने वाले धर्मवीर भाई मतिदास के वंश में ही एक महान् देशभक्त थे। जेहलम जिले के चकवाल ग्राम में जन्मे भाई बालमुकुन्द। महान् स्वातन्त्र्य सेनानी देवतास्वरूप भाई परमानन्द के चचेरे भाई थे बालमुकुन्द।

प्रारम्भिक शिक्षा दीक्षा तो उनकी ग्राम में ही हुई किन्तु बाद में उन्होंने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक लाहौर में प्रवेश ले लिया। यह शिक्षण संस्था उन दिनों राष्ट्रभक्तों का प्रशिक्षण केन्द्र ही बनी हुई थी। महर्षि दयानन्द का स्वराज्य मंत्र इसके कण-कण में गूंजित होकर इसमें शिक्षा प्राप्ति हेतु आने वालों को स्वकर्त्तव्य का बोध कराया करता था। फलतः भाई बालमुकुन्द के हृदय में भी स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिए स्वकर्त्तव्य के पालन की पावन भावना जाग्रत हुई। यहीं उनका अपने युग के महान् राष्ट्र निर्माता लाला लाजपतराय से भी सम्पर्क हुआ। उन्हीं के नेतृत्व में किशोर बालमुकुन्द भी आर्यसमाज के कार्यों में सक्रिय योगदान देने लगा। समाज सुधार कार्यक्रम में उसने रुचि ली तो अछूतोद्धार आन्दोलन में भी बालमुकुन्द सक्रिय हुए। अकाल व भूकम्प पीड़ितों की सेवा का अवसर आया तो भी आपने लाला जी के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर 'संसार का उपकार करने' के आर्य समाज के कार्यक्रम को गतिमान किया।

सन् 1908 सूफी अम्बाप्रसाद एवं सरदार अजीतसिंह ने क्रांतिकारी दल का संगठन आरम्भ किया। इसी वर्ष विदेशों में हरदयाल एम.ए. भी इंग्लैंड से स्वदेश लौटे थे। स्वदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रचार-प्रसार ही था उनके भारत वापस आने का एकमात्र उद्देश्य था। अल्पावधि में ही उनकी प्रेरणा पर अनेक युवक क्रान्ति पथ के पथिक बन गए। उन्हीं में थे महर्षि दयानन्द के परम भक्त भाई बालमुकुन्द भी।

बढ़ती हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों से अंग्रेज़ अधिकारियों की नींद हराम हो गई। उन्होंने लाला हरदयाल सूफ़ी अम्बाप्रसाद एवं सरदार अजीत सिंह को अपने चक्र में फंसाने के उपक्रम आरम्भ कर दिये। लाला हरदयाल

पुनः युरोप प्रस्थान कर गए तो सूफी अम्बाप्रसाद और सरदार अजीतसिंह ने ईरान की राह ले ली ।

इन नेताओं के भारत से बाहर चले जाने पर क्रांतिकार्य के संचालन का भार दिल्लीवासी मास्टर अमीरचन्द ने संभाला । इन्हीं दिनों सुविख्यात क्रांतिकारी श्री रासबिहारी वसु ने नए सिरे से क्रांतिकारियों का संगठन आरम्भ किया । क्रांति की ज्वाला धधकाने का कार्य पुनः सुसंगठित रूप से आरम्भ हो गया । लाहौर में क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन का भार सौंपा गया भाई बालमुकुन्द को । उन्होंने 'लिबर्टी' नामक एक क्रांतिकारी पत्रक को कई बार मुद्रित कराया और गुप्त रूप से नितांत व्यवस्थित ढंग से वितरित भी कराया ।

अंग्रज़ी राजय के गुप्तचर अधिकारी सिर पटक कर रह गए किन्तु कोई भी सूत्र खोजने में असफलता ही उनकी नियति बनी । भाई बालमुकुन्द के नेतृत्व में पंजाब में क्रांतिकारी गतिविधियाँ सुगठित होती गई । सन् 1912 घटनाचक्र ने एक नवीन मोड़ लिया । पंजाब के शासन की बागडोर सर माइकेल ओडवायर के हाथों में आ गई । पंचनद की पावन धरा से स्वातन्त्र्य लक्ष्मी के पुजारियों का समूलाच्छेद करने का इरादा अपने हृदय में कर उसने देशभक्तों के निर्मम दमन का क्रम आरम्भ किया । जनसाधारण भी दमन चक्र की चक्की में पिसने लगगा । इन अत्याचारियों का प्रतिशोध लेने के लिए क्रांतिकारी भी योजनाएं बनाने लगे । अभी लाहौर का क्रांतिकारी दल अंग्रेज़ अधिकारियों के अत्याचारों के विरुद्ध 'एक्शन' की बाट जोह ही रहा था कि दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द के गुरु ने अपनी योजना को क्रियान्वित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

23.12.1912 दिल्ली के मुख्य बाज़ारें से तत्कालीन वाइसराय लार्ड हार्डिंग को हाथी पर बैठा कर उसकी सपत्नीक शोभायात्रा निकाली जा रही थी । इसे देखने के लिए सैकड़ों नर-नारी बाज़रों और मकानों की छतों पर एकत्रित थे । यह शोभायात्र जब चांदनी चौक में पहुँची तो सहसा ही एक भयानक विस्फोट हुआ और चतुर्दिक सन्नाटा छा गया । लार्ड हार्डिंग सपत्नीक घायल हो गया और उसे तुरन्त अस्पताल ले जाया गया । जबकि

उसके एक अंगरक्षक के घटनास्थल पर ही प्राण पखेरू उड़ गए ।

इस बम विस्फाट के फलस्वरूप उड़े धुएं के प्रचंड अम्बार के कारण बहुत देर तक चारें ओर अंधकार सा ही व्याप्त रहा । कोई भी अनुमान न लग पाया कि वह बम किस दिशा से और किस व्यक्ति द्वारा फेंका गया है । इस घटना से विक्षुब्ध अंग्रेज़ी राज्यसत्ता की क्रोधाग्नि में घी पड़ चुका था । पुलिस ने स्थान-स्थान पर छापे मार कर क्रांतिकारियों की खोज आरम्भ कर दी । परन्तु इन सारे प्रयासों के बावजूद अंग्रेज़ों की पुलिस को निराशा का ही मुख देखना पड़ रहा था, क्योंकि उसके हाथ एक भी ऐसा अभियुक्त नहीं आ पाया था जिसका सम्बन्ध इस बमकाण्ड से जोड़ा जा सके ।

परन्तु इस काण्ड के 6 मास के उपरांत लाहौर नगर के एक नया विस्फोट हो गया । 13.5.1931 अंग्रेज़ी सरकार के क्रीतदास और दासता को ही प्रभुप्रदत्त वरदान मानने वाले सरकारी कर्मचारियों ने लाहौर के लारेन्स उद्यान में एक सभा आयोजित की । अचानक ही सभा के मध्य एक बम का धमाका हुआ और एक राज भक्त होने का दावेदार चपरासी सदा के लिएसो गया । क्रांतिकारियों द्वारा किये गये इन एक्शनों का सिलसिला पंचनद की पावन धरा से लेकर शस्यश्यालमा बंग भूमि तक विस्तृत हो चुका था । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अटक से कटक पर्यन्त समग्र आर्य भूमि विदेशी राज्य सत्ता को चुनौती देने के हेतु सन्नद्ध हो उठी है और उसी की चेतावनियाँ हैं स्थान-स्थान पर हो रहे ये बम विस्फोट ।

दमन चक्र और भी जोरों से चला और देखना है जोर कितना बाजुए क़ातिल में है के उद्घोष क्रांतिकारी भी ध्येय पथ पर अविचल रहे । गिरफ़्तारियों का सिलसिला तीव्र हो उठा और क्रांतिकारी दल के ही एक भीरू सदस्य दीनानाथ ने अंग्रेज़ सरकार को क्रांतिकारियों की कई गुप्त योजनाओं के सूत्र दे दिये । इनके आधार पर दिल्ली से अमीरचन्द, लाला हनुमंत सहाय एवं श्री बसंत कुमार विश्वास तथा श्री बलराज भल्ला को बदी बनाया गया तो लाहौर में मास्टर अवध बिहारी भी गिरफ्तार कर लिए गए । भाई बालमुकुन्द उन दिनों जोधपुराधीश के राजकुमारों के शिक्षक के रूप में जोधपुर में रह रहे थे और रणबांकुरे राजपूतों की उसी धरती में शौर्य और त्याग तथा देशहित

सर्वस्व समर्पण के भाव जगाने और अंग्रेज़ी राज्यसत्त से लोहा लेने के लिए भी युवकों को प्रेरित कर रहे थे, जिसे महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपनी जीवनयात्रा के अंतिम दिनों में अपनी कार्यस्थली बनाया था ।

विश्वासघाती दीनानाथ ने भीरुता के वशीभूत अंग्रेज़ गुप्तचर अधिकारियों को भाई बालमुकुन्द की गतिविधियों के सम्बन्ध में ही जानकारी नहीं दी अपितु यह भी कह दिया कि बालमुकुन्द जी के ग्राम में उनके घर पर भी कुछ बम रखे हैं । फलतः बालमुकुन्द जी तो बंदी बना ही लिए गए, ग्राम में उनके घर के फर्श को भी पुलिस न दो-दो गज की गहराई तक खोद डाला । भाई बालमुकुन्द जी को बन्दी बना दिए जाने के उपरांत अभियोग का नाटक हुआ । दिल्ली में मुक़द्दमा चला । सबसे बड़ा आरोप था लारेंस गार्डन का बम और तख्ता पलटने के पर्चों की योजना । भाई बालमुकुन्द चूंकि लाहौर के जत्थेदार थे और बड़े योग्य कट्टर देशभक्त थे, इसलिए आपके खिलाफ कुछ भी सबूत न होने के बावजूद फांसी की सजा दे दी गई । चीफ कोर्ट का जज अपील के फैसले में स्वयं लिखता है–

> Firstly, it is pointed out rightly enough that in search of his houses at Jodhpur and Karyala, his home in the Jhelum District, Failed to reveal anything in his possession any conditions literature. Secondly admittedly he had no direct connection with the Lahore bomb outrange or that July leaflets.

यह तर्क पेश किया गया है कि उनके घरों की तलाशी से कोई काग़ज़ ऐसा नहीं निकला जो कि प्रचार करने वाला हो और दूसरी बात यह भी ठीक है कि लाहौर बम से और जुलाई में बाँटे गये तख्ता पलट पर्चों से भी उनका कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता और इस मुक़द्दमे में आर किसी बम का जिक्र भी नहीं, फिर भी उन्हें मौत की सज़ा क्यों दी गई । जज लिखता है कि क्या हुआ कि यदि वे उन दिनों लाहौर में नहीं थे, क्या हुआ यदि इस बात का प्रमाण नहीं कि बाद में भी उन्हें बम चलाने की खबर दी गई । आखिर वह षडयंत्र का सदस्य तो था ही । वह साजिश में शामिल तो हो ही चुका था । बस इसी से वह हत्या का जिम्मेदार है और कानून के अनुसार उसे फांसी की सजा

मिलनी चाहिये। कानून की विशेषताओं का अब क्या जिक्र करें? हद ही हो गई है। उसको फाँसी की सजा दी गई, क्योंकि वह बड़े कट्टर तख्ता पलटने वाले थे और बड़े योग्य थे। देशभक्ति की भावना बड़े जोरों से भरी हुई थी और दूसरी बात यह थी कि दिल्ली बम के चल जाने के बाद भी उसके चलाने वालों का पता न चल सकने से सरकार का रोब खत्म हो गया था। O-Dyer (ओडायर) नया-नया लाट बनकर आया था। वह यह बर्दाशत नहीं कर सका। सारा क्रोध इसी मुक़द्दमे पर निकाला गया। एक सज्जन बड़े सुन्दर शब्दों में ओडायर की पॉलिसी का जिक्र करते हैं, वे कहते हैं कि ओडायर की पॉलिसी थी—

Guilty or not guilty, a few must be punished to maintain the prestige of the govt.

चाहे अपराधी हो या निर्दोष, कुछ आदमियों को सज़ा जरूर दी जाये, ताकि सरकार के रोब में कमी न हो।

खैर! उसको फांसी की सज़ा हुई। उसने बड़ी प्रसन्नता से सुनी। अपील खारिज हो चुकने के बाद उसको 1914 में फाँसी पर लटका दिया गया। लोग बताते हैं कि वह बड़े चाव से दौड़े-दौड़े गये। फाँसी के तख्ते पर चढ़ गये और अपने हाथों से ही फाँसी की रस्सी को गले में डाल लिया। भाई बालमुकुन्द जी की अपनी शहादत बड़ी ऊँची और श्रद्धा के योग्य हैं। लेकिन उनके बलिदानों को धर्मपत्नी के अतुलनीय प्रेम से सती होने से चार चांद लग गये।

10. अमीरचन्द

स्वदेशहित हज़ारों बार स्वजीवन अर्पित करने की महान् आकांक्षा को हृदय में संजोए जो जवाँमर्द जंगे-आज़ादी की शमा के परवाने बनकर कर्त्तव्य पथ पर अग्रगामी हुए थे उन्हीं में से एक थे मास्टर अमीरचन्द। भारत की राजधानी दिल्ली में अंग्रेज़ी राज्यसत्ता के विरुद्ध हुए प्रथम स्वातन्त्र्य समर के ठीक 12 वर्ष बाद लाला हुकुमचन्द वैश्य कुलदीपक के रूप में जम्मे थे वीरव्रती अमीरचन्द। उन्होंने दिल्ली में ही अपनी शिक्षा दीक्षा पूर्ण की और उर्दू और अंग्रेज़ी के प्रकांड पंडित बन गए। शिक्षापूर्ण करने के उपरांत उनकी दिल्ली के मिशन स्कूल में ही शिक्षक के रूप में नियुक्ति हो गई। उसके स्नेहमय व्यवहार के कारण वे अपने छात्रों के आदर और आस्था के भी केन्द्र बन चुके थे।

अमीर चन्द स्वजाति और स्वदेश के समक्ष विद्यमान विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में विचार करने और उनके निवारणार्थ कुछ कर गुजरने की तमन्ना अपने हृदय में संजोए हुए थे। अंग्रेज़ों द्वारा उनके लिए लिपिक तैयार करने की दृष्टि से प्रचलित की गई शिक्षा पद्धति से भी उनके मन में विक्षोभ बढ़ता जा रहा था। उन्हीं दिनों दिल्ली के एक देशभक्त वस्त्र व्यवसायी और राष्ट्रभक्त कर्मयोगी लाला हनुमंत सहाय से भी उनका सम्पर्क बढ़ा। इन दोनों के संपर्क और विचार-विमर्श का परिणाम प्रस्फुटित हुआ किनारी बाज़ार में राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना के रूप में। मास्टर अमीरचन्द ने मिशन स्कूल से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय स्कूल में शिक्षक का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लिया।

उन्हीं दिनों उसने महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की विचारधारा का भी गहन अध्ययन किया। स्वामी दयानन्द द्वारा अपने अमरग्रंथों में प्रतिपादन स्वराज्य की महत्ता और स्वजाति के समक्ष विद्यमान समस्याओं, बाल विवाह, विधवा विवाहों पर लगी राक तथा शूद्रों एवं स्त्रियों को शिक्षा न देने आदि के कुपरिणामों के सम्बन्ध में वर्णित सफाई को भी परखा और स्वदेश की स्वतन्त्रता हेतु कुछ कर गुजरने की आकांक्षा उसके हृदय में और भी अधिक तीव्र हो उठी। परिणामतः राष्ट्रीय स्कूल में शिक्षक के पद पर कार्यरत रहते

हुए भी वह क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध हो गया। अनेक युवकों को उसने क्रांति यज्ञ में अपनी योगदान देने के लिए सिद्ध किया। सुप्रसिद्ध आर्य नेता महात्मा हंसराज के सुयोग्य पुत्र श्री बलराज, श्री चरणदास, श्री अवध बिहारी आदि भी आपके मुख्य सहयोगी बन गए। इस प्रकार क्रान्तिपथ के इन सभी सहयोगियों के साथ आप स्वदेश को पराधीनता से मुक्ति दिलाने के अभियान में जुट गए। बलराज और अवध बिहारी उन दिनों लाहौर के छात्र थे, परन्तु वे समय-समय पर दिल्ली आकर मास्टर अमीरचन्द से विचार-विमर्श किया करते थे और उन्हीं के पास ठहरते थे।

मास्टर अमीरचन्द स्वातन्त्र्य लक्ष्मी के श्री चरणों में अपना जीवन प्रसून समर्पित करने का सत्संकल्प ग्रहण कर चुके थे। अतएव उन्हेंने अविवाहित रहने का निश्चय कर सुलतान चन्द नामक बालक को अपना दत्तक पुत्र बना लिया था। किन्तु भावी घटनाक्रम ने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्तियों को परखने में सिद्धहस्त स्वातन्त्र्य के प्रति अनुरक्त यह स्वदेशभक्त भूल कर बैठा था।

आर्य समाज और महर्षि दयानन्द के निष्ठावान् अनुयायी सरदार अजीत सिंह के विदेश गमन के उपरांत लाहौर में क्रांतिकारी गतिविधियों में अस्त-व्यस्तता आ गई थी। उन्हीं दिनों मास्टर अमीरचन्द ने लाहौर के मुख्य क्रांतिकारी भाई बालमुकुन्द से सम्पर्क स्थापित कर क्रांतिकारी गतिविधियों को पुनः व्यवस्थित किया और दोनों में सहयोग आरम्भ हो गया। 1908 ई. में जब लाला हरदयाल भारत आए तो मास्टर अमीर चन्द को उनके भी निकट सम्पर्क में आने का सुयोग प्राप्त हो गया। वह जब यूरोप वापस लौटे तो उन्होंने क्रांति के प्रचार के सम्बन्ध में मास्टर जी को समुचित दिशादान और मार्गदर्शन प्रदान किया। उन्हीं दिनों बंगभूमि के महान् विप्लवी नेता रासबिहारी वसु भी वन विभाग में एक कर्मचारी के रूप में नियुक्त होकर देहरादून आ गये थे।

उनके सहयोग से पंजाब दिल्ली तथा उत्तरप्रदेश के कई क्रांतिकारियों ने एक अखिल भारतीय विप्लव की योजना का प्रारूप तैयार किया। इस योजना के अनुरूप ही मास्टर अमीर चन्द ने 'लिबर्टी' शीर्षक से एक पत्रक लिखा

और कलकत्ता के राजा बाज़ार स्थित एक मुद्रणालय में मुद्रित हुआ यह पत्रक पंजाब, दिल्ली और उत्तरप्रदेश के अनेक स्थानों पर वितरित किया गया। इतना ही नहीं अपितु देहरादून, अम्बाला और कसौली की सैनिक छावनियों में भी यह क्रांतिकारी पत्रक पहुँचा। इस पत्रक ने अंग्रेज़ गुप्तचरों की नींद हराम कर दी। चतुर्दिक् हाथ पैर मारने पर भी उन्हें कोई सूत्र न मिल पाया।

अब आया सन् 1912 भारतीय इतिहास का एक अविस्मरणीय वर्ष। क्योंकि यही वह साल था, जब दिल्ली को अंग्रेज़ी भारत की राजधानी घोषित किया गया और लार्ड हार्डिं की प्रथम वायसराय के रूप में नियुक्ति हुई। 23.12.1912 को जब ऐतिहासिक लाल किले से वायसराय का विशाल चल समारोह नगर परिभ्रमण के सिलसिले में निकला तो चांदनी चौक में हुए बम के धमाके ने रंग में भंग कर दिया। क्रांतिकारियों द्वारा विदशी सत्ता के इस प्रतीक को दी गई चुनौती ने घटनाक्रम को एक नवीन मोड़ दे दिया। तलाशियों और धरपकड़ का सिलसिला जारी रहा तो क्रांतिकारियों ने भी भारत के समस्त उत्तरांचल से लेकर पूर्वांचल तक अपनी गतिविधियाँ विस्तृत कर दीं। 13.5.1913 को लाहौर के लारेन्स उद्यान में अंग्रेज़ भक्तों की सभा में विस्फोट हुआ तो बंगभूमि के मैमनसिंह, भद्रेश्वर और मौलवी बाज़ार में भी उसी वर्ष बम विस्फोट हुए। सिलहट के जिला कलैक्टर के बाग़ में भी एक बम रखा हुआ मिला। बम पर लिपटे एक काग़ज़ ने ही गुप्तचर विभाग को राजा बाज़ार के उपरोक्त प्रेस का पता दे दिया। राजा बाज़ार का प्रेस घिरा तो वहीं से उस क्षेत्र में स्थित कांतिकारियों के एक गुप्त अड्डे का भी गुप्तचरों को पता लग गया। वहाँ भी छापा मारा गया और कुछ महत्वपूर्ण पत्र प्राप्त हो गया।

अब दमनचक्र और गिरफ़्तारियों का क्रम और भी तीव्र हो गया। 14.2.1914 को इन बम कांडों में संलग्न रहने के आरोप में दिल्ली में मास्टर अमीरचन्द जी, सर्वश्री बसंत कुमार विश्वास, बलराज भल्ला, चरणदास और लाला हनुमंत सहाय बंदी बना लिए गए तो लाहौर में अवध बिहारी और जोधपुर में भाई बालमुकुन्द पर। अभियोग चला और अक्तूबर 1914 में दिए गए निर्णय के अनुसार भाई बालमुकुन्द, श्री अवध बिहारी तथा श्री बसन्त

कुमार विश्वास के साथ ही मास्टर अमीरचन्द को भी मृत्युदंड सुना दिया गया। इस केस में चार आदमियों को फांसी की सजा हुई थी। उनमें मास्टर अमीरचन्द जी कोई 50 वर्ष की उम्र के थे। वे बड़े लायक और योग्य आदमी थे। वह दिल्ली के रहने वाले थे। उच्च शिक्षा प्राप्त थे।

एक दिन अवधबिहारी की तलाशी हुई। बम की टोपी मिल गई और लाहौर का एक पत्र मिल गया जिस पर कि मेहरसिंह की ओर से एम.एम. आई. दस्तखत किये थे। पूछने पर उसने बता दिया कि यह खत दीनानाथ की ओर से है। दीनानाथ की गिरफ्तारी की गई। वह फूट पड़ा और उसने वह सारा भेद खोल दिया। उसने बताया कि लारेंस गार्डन का बम श्री अवधबिहारी और बसन्तकुमार ने रखा था। खैर, मुक़द्दमा चला।

मास्टर अमीरचन्द ने अपने भतीजे सुलतानचन्द को उत्तराधिकारी बनाया था और उससे अपने पुत्रों जैसा प्यार करते थे। उसे अपनी इच्छानुसार शिक्षा देते थे। देशभक्त बनाना चाहते थे। उस पर मुक़द्दमा चला। वही पुत्र उसके खिलाफ गवाह बन गया। जरा सोचो बेचारे मास्टर अमीचन्द जी के बारे में। जिसे अपना पुत्र बनाया था वही सरकारी गवाह बनकर उसके खिलाफ गवाही दे रहा था।

कैसी दर्दनाक स्थिति थी। जब मुसीबत का समय आया तो उसके अपने दिल का टुकड़ा अपना पुत्र भी साथ न दे सका। उर्दू के एक शायर ने क्या खूब कहा है–

बागवां ने आग दी जब आशियाने को मेरे।

जिनपे तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे।।

मुक़द्दमा चलता रहा। गवाह भुगतते रहे। सबूत मिला कि वह एक साजिस के सदस्य भी हैं और चूंकि वह बड़े लायक और बुद्धिमान है इसलिए हत्या आदि करने की साजिश के लिए नौजवानों को बरगला सकते हैं। और–

One who spent his life furthering murderous schemes which he was to timid to carry out himself.

हत्या का प्रचार करने में जिसने अपनी पूरी ज़िन्दगी लगा दी उसके बारे में वह स्वयं साहसहीन था ।

उन्हीं दिनों तख्ता पलट पार्टी की ओर से Liberty (आज़ादी) नाम का एक पर्चा बाँटा जाता था । एक पर्चे का मसौदा मास्टर जी के हाथ का लिखा उनके घर में मिल गया । उसमें ऐसे वाक्य आपत्तिजनक माने गये–

We are so many that we an seize and snatch from them their connon. Reforms will not do. Revolution and general massecre of all the foreigners specially the English will and alone can serve our purpose.

हम संख्या में इतने हैं कि हम उनकी तोपें छीन सकते है । यह सड़े सुधार या योजनाएं किसी काम नहीं आयेंगी । एक बसर तख्ता पलट दो और फिरंगी को मार खत्म करो । खैर, इन्हीं वाक्यों के कारण ही उन्हें बड़ा खूंखार क़ातिल समझा गया और कहा गया ।

उसके चरित्र के सम्बन्ध में केनन आलनट और मिस्टर एस.के. रुद्र आदि बतौर गवाह पेश हुए । उन्होंने उसकी बहुत तारीफ की, लेकिन जज लिखता है कि मास्टर अमीरचन्द लामिसाल देशभक्त, बड़े नेक, दर्दमंद और ऊँचे चरित्र के थे ।

उनकी नश्वर देह अनश्वर वीरतव में परिणत होकर युग-युगों तक श्रद्धा और पूजा का पावन प्रतीक बन गई । वे धरती के सीमित घरौंदे को त्याग कर आकाश की निःसीमता में व्याप्त हो गए । शस्यश्यामला भारत माता की आरती के थाल में देश की कालात्मा ने चार अमर प्राण दीपक और संजो दिए ।

11. लाला हरदयाल

समय का धर्म गति है। इसी गति के साथ अभिन्न रूप से 'परिवर्तन' और 'क्रांति' शब्द जुड़े हुए हैं। भारत के राजनैतिक इतिहास को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि समय की गति का अनुसरण करने वाली क्रांति लाख दबाने पर भी दब नहीं सकी। क्योंकि वह उस युग की आवश्यकता थी। पंजाब में जब सरदार अजीत सिंह और लाला लाजपतराय को अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध जन-चेतना जगाने की गतिविधियों के संचालन के कारण 'ब्रिटिश रेग्युलेशन तीन के अन्तर्गत नज़रबंद कर दिया गया। परन्तु इनके नजरबंद किये जाने से क्रांति का पहिया जाम नहीं हो गया। क्रांति को नज़रबंद नहीं होना था, सो नहीं ही हुई। उसके स्थान पर कई क्रांतिकारी नेता निकल आये। उन्हीं में से एक विश्यात नाम है—'लाला हरदयाल' का जिन्होंने विदेशों में रहते हुए समर्थ सशस्त्र क्रांति करने के उद्योग में महत्त्वपूर्ण सहायता दी थी।

उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में, दिल्ली में जन्मे लला हरदयाल को ईश्वर ने विलक्षण स्मरणशक्ति से विभूषित किया था। जिस बात को पढ़ लेते या सुन लेते वह उन्हें सदा के लिये याद हो जाती। यह अनुदान जिसे मिला हो उसके लिए विद्याध्ययन और विश्वविद्यालयों की डिग्रियाँ पाना सहज सरल होता है। साथ ही उन डिग्रियों के बल पर किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में उच्च्व पद पर आसीन हो सकना भी कठिन नहीं था किन्तु क्या ये अनुदान केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए मिलते हैं तो फिर इनसे व्यक्तिगत स्वार्थ साधना ही क्यों की जाये उनका उपयोग सार्वजनिक हित में क्यों न हो?

लाला हरदयाल ने यह सोचते हुए अपनी इस विलक्षण स्मरणशक्ति का सदुपयोग अपने ही हित में नहीं राष्ट्र के हित में करना श्रेयस्कर समझा। उन्होंने आराम-तलबी न पसन्द करके सतत् कर्मठता और कष्ट-कठिनाइयों का मार्ग चुना—राष्ट्रीय क्रांति का मार्ग। वे चाहते तो मजे से देश विदेश के किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में मान्य प्रोफेसर या प्रिंसिपल के पद पर रह कर पांडित्यपूर्ण ग्रंथों का लेखन किया करते। धन, मान और आराम सब उन्हें

सहज सुलभ होता किन्तु उन्होंने इस ईश्वरीय अनुदान का महत्त्व समझा और उसका उपयोग वैसे ही महत्त्वपूर्ण कार्य में किया जहाँ किया जाना चाहिये था ।

मेधावी छात्र होने के कारण उन्होंने एम.ए. में इतने अंक प्राप्त किये कि उन्हें उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड जाकर पढ़ने के लिए सरकारी छात्रवृत्ति मिली । उस छात्रवृत्ति से वे इंग्लैंड गये और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ने लगे । किन्तु उनकी यह पढ़ाई अधिक दिनों तक जारी न रह सकी । उन्होंने अन्तःकरण से आती आवाज़ को सुना–

तुम अकेले ही उच्च शिक्षा प्राप्त करके सम्पन्न और सुखी जीवनयापन कर लो इससे क्या होने वाला है । देश पराधीन है । देशवासी दुःखी और त्रस्त हैं । अकेले व्यक्ति की प्रगति, सुख और सम्मान तब तक बेमानी हैं जब तक वह जिस समाज में रहता है वह भी प्रगतिशील, सुखी और स्वतन्त्र नहीं होता ।

अतः उन्होंने व्यक्तिगत सुख साधन की अपेक्षा देश को स्वतन्त्र कराने के लिए काम करना उचित समझा और ऑक्सफोर्ड में चल रही पढ़ाई को छोड़कर अपने देश आ गये ।

उनके दिल्ली आने से पहले ही यह स्थान क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनता जा रहा था । रास बिहारी बोस और मास्टर अमीरचन्द मिलकर भीतर ही भीतर क्रांति की आग सुलगा रहे थे । स्कूलों और व्यायामशालाओं के माध्यम से ऐसे कई युवक खोज कर संगठित प्रशिक्षित भी किये जा सके थे जो समय आने पर प्राणों पर खेलकर भी ऐसे काम कर दिखायें जो अनगिनत देशवासियों के हृदय में देशभक्ति का ज्वार उमड़ाने में सहायक हो सके । उन्होंने जब अपन मन की बात इन लोगों को बताई तो मास्टर अमीरचन्द व रासबिहारी बोस ने उनका हार्दिक स्वागत किया और कुछ समय के लिए वे दिल्ली की क्रांतिकारी गतिविधियों के सूत्र संचालक ही बना दिये गये ।

हार्डिंग्ज़ बम के केस के समय वे ही दिल्ली के क्रांतिकारी संगठन के नेता था । राजधानी कलकत्ता से बदल दिये जाने के उपलक्ष्य में 23 दिसम्बर को वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज़ की विराट उच्च भव्य शोभायात्रा के पीछे अंग्रेज़

सरकार का यही उद्देश्य था कि भारतवासियों पर अपनी शक्ति और वैभव का सिक्का जमा दें किन्तु क्रांतिकारियों ने उनके इस उद्देश्य को सफल नहीं होने दिया। लार्ड हार्डिंग्ज़ का जुलूस जब चाँदी चौक की ओर बढ़ा तभी एक भयंकर धमाके के कारण जुलूस में भगदड़ मच गई। लार्ड हार्डिंग्ज़ पर बम फेंका गया। वह तो बाल-बाल बच गया परन्तु उसका ए.डी.सी. मारा गया। रंग में भंग हो गया, महीनों की तैयारी और लाखों रुपयों का खर्च बेकार हो गया। अंग्रेज़ी सरकार का लोगों के दिलों पर उनकी शक्ति और वैभव की धाक तो नहीं बैठी उलटे यह भावना पुष्ट हुई कि इन्हें भगाया भी जा सकता है।

हार्डिंग्ज़ बम केस के बाद जो गिरफ़्तारियाँ हुई उनमें लाला हरदयाल नहीं थे। वे क्रांतिकारी आन्दोलन को गति देने के लिए विदेश जा पहुँचे क्योंकि यहाँ रहन पर उनका पकड़ा जाना सुनिश्चित था। इस केस में मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी, भाई बालमुकुन्द और बसन्त कुमार विश्वास को फाँसी की सज़ा हुई और हनुमन्त सहाय और बलराज भल्ला को सात-सात वर्ष काले पानी की सज़ा हुई। क्रांति के सूत्र संचालक रासबिहारी बोस और लाला हरदयाल विदेश चले गये। वहीं से उन्होंने अपना यह स्वतन्त्र अभियान चलाया जो आगे चलकर गदर पार्टी और आज़ाद हिन्द सेना के रूप में सामने आया।

इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय भी जब अंग्रेज़ ताज के अन्तर्गत जो विशाल साम्राज्य था उसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था, जबकि अधिकांश भारतवासी अंग्रेज़ी राज्य को उखाड़ ही फेंकना असम्भव मानते थे, उस अंधकार युग में भी कितने ही लोग ऐसे थे जो अंग्रेज़ी राज्य की समाप्ति को सुनिश्चित-सा मानते हुए प्राण पण से उसकी जड़ों में तेल डालने में लगे हुए थे। उन्हीं में से एक लाला हरदयाल भी थे कहना न होगा कि आज भी जो लोग नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्रांति की बात करते हैं या उसके लिए अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं को, अपनी भी आर्थिक प्रगति को बिसार कर युग परिवर्तन या सांस्कृतिक, नैतिक पुनरुत्थान के अभियान में प्राण-पण से जुटे हैं। बहुत सम्भव है उसका भी वैसा ही सत्परिणाम देखने को

मिले । जिनकी आज कल्पना ही नहीं की जा सकती । भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में इसे देखा जाये तो वह प्रभात आना सुनिश्चित है जिसकी आज के अन्धकार युग में सम्भावना दुष्कर प्रतीत होती है ।

लाला हरदयाल जब विदेश पहुँचे तो वहाँ भी उन्हें कई भारतवासी स्वदेश की स्वतन्त्रता का सुखद स्वप्न देखते हुए मिले । उस समय ऐसे कई भारतवासी विदेशों में रहकर भारत को स्वतन्त्र करने के लिये काम कर रहे थे । डॉ. पाण्डुरंग सदाशिव खान खोजे इसी उद्देश्य से विदेश गये थे । कई भारतीय सुरेन्द्रमोहन बोस, अधरचन्द्र 'लश्कर' खगेन दास, तारकनाथ दास तथा गिरीन मुखर्जी आदि मुख्य थे । अच्छी तरह से अमेरिका में जमे हुए थे । पंजाब के प्रवासी भारतीयों ने अमेरिका में रहते हुए भारत को स्वतन्त्र करानेके लिए बहुत काम किया था । खान खोजे की इण्डियन इण्डिपेंडेंस की तरह 'हिन्दी एसोसिएशन' भी इसी अभियान में जुटी हुई थी । हिन्दी से उनका भाशा नहीं भारतवासी से तात्पर्य था यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि उस समय के विदेशी पंजाबियों के मानस में राष्ट्रीयता की भावना थी । उसकी तुलना में आज की पृथक खालिस्तान की माँग कितनी छोटी और ओछी लगती है ।

लाला हरदयाल ने इस हिन्दी एसोसिएशन को 'गदर पार्टी' के रूप में विकसित किया । लालाजी बहुत सुन्दर व्याख्यान दे लेते थे । उन्होंने अमेरिका में भारतीय सभ्यता और भारतीय दर्शन पर ऐसे पांडित्यपूर्ण और हृदयग्राही भाषण दिये थे कि सुनने वाले दंग रह गये । अमेरिकावासी उनकी इस प्रतिभा से बहुत प्रभावित हुए । कई विद्यालयों की ओर से उनके पास भारतीय दर्शन के प्रोफेसर बनने के प्रस्ताव आये । जिन्हें स्वीकार करके वे विदेशों में सम्पन्न और सम्मानित जीवनयापन कर सकते थे । किन्तु वे इस उद्देश्य से तो विदेश नहीं गये थे । उनके हृदय कुण्ड में तो कुछ दूसरी ही आग जल रही थी ।

उन्होंने वहाँ गदर पार्टी का गठन किया जिसका उद्देश्य प्रवासी भारतीयों की सहायता से भारत में सफल विद्रोह करना था । वे इस पार्टी के मंत्री थे । अध्यक्ष थे बाबा सोहन सिंह और उपाध्यक्ष थे बाबा केसर सिंह, कोषाध्यक्ष बने पं. काशीराम जोशी जो बाद में इसी विद्रोह के लिए भारत

आये थे ।

गदर-पार्टी द्वारा ''गदर'' नामक एक पत्र का भी प्रकाशन किया गया । इस पत्र के सम्पादन में लाला हरदयाल ने अपनी बौद्धिक क्षमताओं का नियोजन किया । नवम्बर, 1913 में गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ । इसी अंक में 'गदर' पत्र का उद्देश्य भी स्पष्ट किया गया था । 1913 के पहल नवम्बर को भारतीय इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ था, क्योंकि उस समय विदेश में अपनी भारत की भाषा में अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध संग्राम का आरम्भ हुआ था । उनके पत्र का नाम क्या है ? 'गदर' । उनका कार्य क्या है ? 'गदर' । यह 'गदर' कहाँ होगा ? भारत में । कब होगा ? कुछ सालों में । क्यों होगा ? क्योंकि अब भारत की जनता ब्रिटिश राज्य के अत्याचार के जुए को अंग्रेज़ी झेलते उकता चुकी होगी और वह उसे आगे झेल नहीं सकेगी ।

पत्र कई भारतीय भाषाओ में छपता था और दूर-दूर तक फैले हुए भारतवासियों को एक उद्देश्य-सूत्र में बाँधने का काम करता था । यह हांगकांग और सिंगापुर तक जाता था । सर्वत्र इसका स्वागत होता था । पंजाब में तो इसके सम्बन्ध में कई लोकगीत भी बन गये थे । पत्र के साथ ही संगठन का काम भी चलता था । स्थान-स्थान पर सभायें आयोजित की जाती थीं । इनके माध्यम से धन संग्रह का काम होता था । लोगों में अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिये कितना जोश था इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि जब धनदान की बात आती थी तो लोग अपनी बैंक पास बुकों को ही भेंट कर देते थे जिसका अर्थ होता था अपनी सारी सम्पदा का दान ।

गदर पार्टी के उद्देश्य के पीछे मात्र जोश रहा हो सो बात नहीं । उसको लाला हरदयाल सैद्धान्तिक अधिष्ठान देकर चले थे । गदर पार्टी का दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय था । भारत के स्वतन्त्रता के लिये ही नहीं जहाँ कहीं भी उसके सदस्य रहते थे वे वहाँ यदि स्वतन्त्रता आन्दोलन चलता था तो उसमें पूरी-पूरी सहायता करने के भी कटिबद्ध थे । प्रथम विश्वयुद्ध के समय विद्रोह का उपयुक्त समय समझकर 1916 की 21 फरवरी क्रांति के लिए निर्दिष्ट हुई । इसमें बर्लिन की क्रांतिकारी कमेटी और जर्मन सरकार का भी समुचित सहयोग लिया जाना था किन्तु क्रांति की यह योजना और तिथि गुप्त

नहीं रह सकी । जिसके फलस्वरूप युद्ध सामग्री व क्रांतिकारियों से भरे हुए जहाज तट पर लगते ही पकड़ लिय गये । क्रांति लगभग असफल हुई । पकड़े गये लोगों पर कई मुक़द्दमे चले, कइयों को फाँसी व उम्र क़ैद हुई ।

1914-18 के बीच का क्रांति प्रयास असफल हुआ इसका यह अर्थ नहीं है कि वह निष्फल गया । यद्यपि तत्कालीन इतिहास लेखकों ने सत्य पर पर्दा डाला है । फिर भी जितने तथ्य उपलब्ध हैं वे भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । लाला हरदयाल का अपना एक महत्त्व है जिसे भुलाया नहीं जा सकता । यह बात दूसरी हे कि ये अपनी इस असफलता से निराश होकर सदा के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन से हाथ खींच गये पर उसके जीवन के पूर्वाद्ध में उन्होंने जो आदर्श प्रतिष्ठापित किये उनसे कई लोगों ने प्रेरणा ली । उनके अलग हो जाने पर भी क्रांति का प्रवाह तो बढ़ता ही गया और भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता मिली । राजनैतिक क्रांति के बाद क्रांति के अगले सोपानों पर भी हमें उसी प्रकार चढ़ना होगा । उसके लिये लाला हरदयाल का यह राष्ट्र प्रेम हमें बल देगा यह निश्चित है ।

12. सोहन लाल पाठक

महर्षि दयानन्द ने स्वदेश की स्वतन्त्रत हेतु स्वाधीनता के संघर्ष को गतिमान् करने के लिए अपनी अमरकृति ''सत्यार्थप्रकाश'' में जो मंत्रदान दिया था, उससे अनेक युवा हृदयों में क्रांति की चिनगारी प्रस्फुटित हुई थी। क्रांतिदूत युवकों में से कई ने मातृभूमि भारत से हज़ारों मील दूर विदेशों से क्रांति का शंखनाद कर वहाँ रहने वाले भारतीयों को स्वकर्त्तव्य का बोध कराया था। ऐसे ही एक क्रांतिकारी थे सोहनलाल पाठक! अमृतसर के निकट पट्टी ग्राम में एक सामान्य गृहस्थ पंडित चन्दाराम के यहाँ सोहनलाल का जन्म 7.1.1883 को हुआ। जन्म से ही ये नितांत कृशकाय थे।

सोहनलाल प्रतिभाशाली छात्र थे। अतः पाँचवीं कक्षा तक उनकी फीस माफ रही तो पाँचवीं के बाद आठवीं कक्षा तक उन्हें दो रुपये मासिक छात्रवृत्ति भी मिलती रही। परन्तु आठवीं कक्षा के बाद जब उन्होंने नार्मल की परीक्षा देने की तैयारी की तो दुर्बल होने के कारण डॉक्टर ने उन्हें अनफिट घोषित कर दिया। पारिवारिक विपन्नता के कारण पाठक जी प्राथमिता शाला में 6 रुपये मासिक पर अध्यापन कार्य करने के लिए बाध्य हो गए। 1901 ई. में उनका विवाह लक्ष्मीदेवी के साथ सम्पन्न हो गया। तदुपरांत सोहन लाल पाठक सपत्नीक लाहौर आ गये। लाहौर में उन दिनों आर्य समाज अपने पूर्ण वैभव पर था। उन दिनों दयानन्द ऐग्लों-वैदिक कॉलेज के प्रिंसिपल महात्मा हंसराज थे। उनके महान् व्यक्तितव से प्रभावित होकर श्री सोहन लाल पाठक ने आर्य समाज की सदस्यता ग्रहणकर सक्रिय रूप से कार्यारम्भ कर दिया।

1903 में उसकी माँ कृपा देवी प्लेग से ग्रसित हुई। वे नहीं चाहतीं थीं कि सोहनलाल जी वहाँ आये और संक्रामक रोग से पीड़ित हों। किन्तु सोहनलाल जी को माँ की बीमारी का पता चल गया और वे घर आ गय। परन्तु इस बीच उनकी माता और भाभी प्लेग का शिकार हो कर प्रभु को प्यारी हो गई थी। 1905 से 1908 तक बंग-भंग, हुतात्मा खुदीराम का बलिदान, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, मदनलाल ढींगरा आदि के क्रांतिकारी आन्दोलनों का आपके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनका झुकाव

राजनीति की ओर तो हुआ ही, उनके विचारों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। अब जहाँ कहीं भी राजनैतिक व्याख्यान होते आप वहाँ जा उपस्थित होते। विशेषर लाला लाजपतराय के भाषणों से तो आपकी भुजायें ही फड़कने लगतीं।

सन् 1907 में ही अपने एक सहयोगी सरदार ज्ञानसिंह के साथ सोहनलाल ने भी देश के लिए जीने और आवश्यकता पड़ने पर प्राण भी देने का संकल्प ग्रहण कर लिया। उनके हृदय में अंग्रेज़ों के लिए अपार घृणा व्याप्त हो गई। सरदार ज्ञानसिंह ने विदेश जाकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करने हेतु विदेश गमन कर दिया और सोहनलाल जी डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में 21 रुपये मासिक पर नियुक्त होकर अपना कार्य बड़ी निष्ठा व लगन से करने लगे। एक बार एक अंग्रेज़ स्कूल इंस्पैक्टर एक उप-निरीक्षण करने आया। उप-निरीक्षक ने पाठक जी को कहा कि यदि उन्होंने अपने छात्रों को कोई गीत सिखाया हो तो उसे सुनवायें। पाठक जी के संकेत पर छात्र हक़ीक़त राय की जीवनी पर आधारित गीत इस तरह गाने लगे—

मुसलमाँ होने को ऐ किबला मैं तैयार नहीं।
आपको नज़र है यह सर ज़रा इन्कार नहीं।।

यह सुनते ही उप-निरीक्षक आग-बबूला हो गया और कक्षा से बाहर निकल गया। अंग्रेज़ स्कूल अंस्पेक्टर क्रॉस भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। स्कूल के प्रधानाध्यापक बख्शी रामलाल बहुत घबराये और पाठक जी को बुलाकर भला बुरा कहने लगे किन्तु पाठक जी ने नितांत दृढ़ता से उत्तर दिया, मैंने छात्रों को जो गीत सिखाया था वह उनके पाठ्य-क्रम में है। यदि वह आपत्तिजनक है तो उसे पाठ्यक्रम में क्यों रखा गया? पाठक जी का उत्तर सुनकर प्रधानाध्यापक महोदय को मौन ही धारण करना पड़ा। इस प्रकार कृशकाय पाठक जी का मनोबल बहुत ऊँचा था; तो उनमें महान् दृढ़ता और संकल्प शक्ति भी थी। वे पहले धूम्रपान करते थे परन्तु एक बार जब उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वे हुक्का पीना छोड़ देंगे तो उस दिन से उन्होंने हुक्के को हाथ तक न लगाया।

पाठक जी ने यह अनुभव कर लिया कि नौकरी करते हुए राष्ट्र कार्य

करना सम्भव नहीं । अतः उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को भी अपनी भावी योजना से अवगत करा दिया । उन्हीं दिनों उन्हें अंग्रेज़ी शिक्षा-पद्धति के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए लाला हरदयाल द्वारा आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठने से इन्कार करने का समाचार प्राप्त हुआ । लाला हरदयाल के इस निर्णय ने उनके भावुक हृदय पर भी गहन प्रभाव डाला । तभी उनके यहाँ पुत्र ने जन्म लिया । परन्तु कुछ समय बाद ही पत्नी और पुत्र दोनों । यह दुर्घटना घटी । अब वे अकेले थे । उन्होंने इस शोकपूर्ण घटना को भी प्रभुप्रदत्त और भावी दिशा का प्रतीक ही माना ।

इन्हीं दिनों मुजंग नामक स्थान में लाला लाजपतराय ने दयानन्द ब्रह्मचर्य आश्रम स्थापित किया । उन्होंने पाठक जी से आश्रम में काम करने को कहा । साथ ही यह भी कहा कि अगर उन्हें वह काम पसन्द न हो तो वे उनके अखबार 'वंदे मातरम्' में काम कर सकते हैं । पाठकजी इन प्रस्तावों पर गंभीरता से विचार करने लगे । इसी बीच लोग पाठकजी को पुनर्विवाह के लिए घेरने लगे । परन्तु पाठक जी ने सबको टका सा जवाब दे दिया कि वे विवाह नहीं करेंगे । इस पर एक ने कहा, विवाह और पुत्र-प्राप्ति के बगैर पितृऋण कैसे चुकाओगे ? पाठक जी ने उन्हें स्पष्टतः उत्तर दिया 'यदि विवाह करने पर पुत्र की प्राप्ति हुई भी तो तीन पीढ़ी तक मेरा नाम रहेगा, उसके बाद सब मुझे भूल जायेंगे । इसी से क्या लाभ होगा ?'

जब कभी लोग उनके समक्ष परिवार वालों की सहायता करने का तर्क प्रस्तुत करते थे तो वह उन्हें एक ही उत्तर देते थे कि परिवार से भी बड़ा है मेरा देश और अब मुझे उसी की सहायता करनी है । पाठक जी के मन में विदेश में रह कर क्रांति की अलख जगाने की इच्छा जागी और वे सरदार ज्ञानसिंह के पास स्याम जा पहुँचे । उन दिनों वहाँ रेल की पटरी बिछाने का कार्य चल रहा था । पाठक जी भी वहीं 80 रुपये मासिक पर कार्य करने लगे । परन्तु यहाँ भी उनका मन न लगा । जो कार्य वे करने आये थे उसके अनुकूल वातावरण नहीं था । वे तो रोज़ी-रोटी के ही चक्कर में फँस गये थे । कहा जाता है कि एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि योगिराज श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि यदि अपने जीवन में तुम्हें कुछ करना हो तो अमेरिका चले जाओ ।

बस, वह नौकरी को लात मार लाला ईश्वरदास के साथ अमेरिका चले गए। किन्तु मार्ग में ही ईश्वरदास भयंकर रोग से पीड़ित हो गए और बैंकाक पहुँचकर उनकी मृत्यु हो गई। विपत्ती में फंस गये पाठकजी! किन्तु वे हांगकांग जा पहुँचे और वहाँ मामूली-सी नौकरी कर ली। यहाँ रहते हुए ही अमेरिका जाने के लिए घर चिट्ठी लिखककर उन्होंने तीन सौ रुपये भी मंगवाये। यह धनराशि प्राप्त करते ही वहाँ प्रस्थान कर वह सीधे मनीला पहुँचे और वहाँ इलाराम के यहाँ ठहरे वहाँ वह छोटे-मोटे जानवरों का शिकार करते थे। एक बार कुछ साथियों ने पूछा कि छोटे-छोटे जानवरों का शिकार क्यों करते हो तो पाठक जी ने हँसकर कहा, 'छोटे-मोटे जानवरों को मारकर मैं शिकार का अभ्यास कर रहा हूँ,जिससे बाद में अंग्रेज़ सरीखे बड़े पशुओं का शिकार कर सकूं।

यहाँ से वे अमेरिका पहुँचे, जहाँ इनकी भेंट भाई परमानन्द से हुई। उनसे प्रभावित होकर भाई जी ने इन्हें फार्मेसी विद्या सीखने के लिए स्टेट कॉलेज में भरती करा दिया। किन्तु पाठकजी के विचार करने की प्रक्रिया सर्वथा अलग ढंग की थी। अतएव उन्होंने विचारा कि यदि मैं इस अध्ययन में ही लगा रहा तो फिर क्रांति का अवसर तो मेरी प्रतीक्षा नहीं करता रहेगा। अतएव पढ़ाई छोड़कर वे सानफ्रांसिस्का चले आये और गदन पार्टी में सम्मिलित हो गए। गदर पार्टी के सदस्यों में क्रांति के लिए अपार जोश था। अमरीकी अफसरों ने गदर पार्टी के सदस्यों को तंग करना शुरू कर दिया। इसीलिए लाला हरदयाल न अमेरिका छोड़ दिया और इंग्लैंड चले गये।

पाठक जी की स्थिति भी नाजुक देख गदर पार्टी के लोगों ने उन्हें बर्मा जाकर क्रांति का प्रचार करने का आदेश दिया। आदेश मान वे जापान, हांगकांग होते हुए बैंकाक पहुँचे और वहाँ से पैदल ही बर्मा गये। उनके साथ नारायण नामक एक व्यक्ति भी था। इन दोनों ने मिलकर फौजी छावनियों में क्रांति का प्रचार आरम्भ कर अपने उत्तदायित्व का निर्वाह किया।

एक दिन छावनी में अस्त्र-शस्त्र समेत जब वे क्रांति प्रचार हेतु जा रहे थे तो सेना का एक भारतीय जमादार उन्हें फुसलाकर ले गया और गिरफ्तार करा दिया। पाठक जी के पास कई सौ कारतूस और तीन ऑटोमैटिक पिस्तौलें

थीं। परन्तु एक भारतीय की हत्या उन्हें पसन्द न थी। अतः उन्होंने उस जमादार को केवल इतना ही कहा, ''एक भाई होकर तुम भाई को पकड़वा रहे हो? क्या तुम्हें गुलामी में ही मज़ा आता है? पकड़े जाने और तलाशी लेने पर पाठक जी के पास कुछ क्रांतिकारी पत्रक भी प्राप्त हुए। अभियोग चला और आखिर उन्हें फांसी की सज़ा सुना दी गई फांसी के तख्ते पर जब उन्हें खड़ा किया गया ता मजिस्ट्रेट बोला–

यदि तुम माफी मांगी तो तुम्हारी फांसी मैं अपनी कलम से रद्द कर दूंगा। इस पर सोहन लाल हँसे, यह हँसी थी, जिसको केवल शहीद लोग ही हँस सकते हैं। वह बोले–

महाशय, यह अच्छी रही कि मैं आपसे माफी माँगू। माफी तो आपको मुझ से मांगनी चाहिए, क्योंकि जो कुछ जोरो-जुल्म है, वह तो सब आपकी ओर से हुआ है, और हो रहा है। मुल्क हमारा है, आप उस पर राज्य कर रहे हैं। अब उलटा मुझ से ही माफी मांगने को कहा जा रहा है। यह खूब रही। लाट साहब! भलेमानस और इन्साफ का तकाजा तो यह है कि आप मुझ से माफी मांगे।

क्या इस कथन में कुछ झूठ था? किन्तु न्याय की बातें साम्राज्यवाद के एक एजेण्ट को क्यों भाती? सोहन लाल पाठक फांसी पर चढ़ा दिये गये और इस प्रकार भारत भूमि अपनी एक वीर संतान के रक्त से पुनः एक बार पावन हो गई।

13. पंडित काशीराम

अंग्रेज़ी राज्यसत्ता के विरुद्ध भारतीय स्वातन्त्र्य के उद्‌गाताओं की कर्मस्थली बनने का सौभाग्य पंचनद की पावनधरा के अम्बाला अंचल को भी प्राप्त हुआ था। आज यह अंचल हरयाणा प्रदेश का अंग है। अम्बाला की पुनीत भूमि सरस्वती और मार्कण्डेय के सुशीतल जल से भी सरसती रही है। ज्ञान तथा मुक्ति के अभिलाषियों और तपस्वी वेदानुरागियों की धरती होने का भी इस अंचल को सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसने कई निर्भीक योद्धाओं, कर्मवीरों और श्रेष्ठ विद्वानों की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त किया है तो इस अंचल के वीर सपूतों न गजनवी, हलाकू और चंगेज सरीखे अनेक विदेशी आक्रांताओं के अत्याचारों के समक्ष भी डट कर सीने ताने हैं। स्वदेश को विदेशियों के अपावन पाश से मुक्ति दिलाने के लिए कर्मक्षेत्र में उतरे वीर मराठों के अश्वों की टाप भी इस धरती ने सुनी है तो जब 1857 के बाद पुनः स्वातन्त्र्य युद्ध के लिए क्रांति के पुजारियों ने देश भर में शंखनाद किया तो इस धरती के भी कई बलिदानी बेटे स्वकर्त्तव्य की पूर्ति हेतु स्वातन्त्र्य समर में कमर बांध कर कूदे। इन्हीं में से एक थे आर्यसमाज के महान् सिद्धान्तों से प्रेरित पंडित काशीराम जी, जिनका जन्म भाद्र शुदी द्वादशी संवत् 1938 को पंडित गंगाराम के यहाँ मंडौली ग्राम में हुआ था।

इन्होंने आरम्भिक शिक्षा अपने ग्राम की पाठशाला में प्रापत की तो एन्ट्रेस की परीक्षा पटियाला से दी। उस समय की प्रचलित पद्धति के अनुसार बाल्यावस्था में पंडित काशीराम को विवाह के बंधन में बांध दिया गया था। पटियाला से एन्ट्रेन्स की परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के उपरांत इन्होंने स्वगृह का त्याग कर दिया और इसके वियोग में ही इनकी पत्नी प्रभु को प्यारी हो गई। पंडित काशीराम ने अपनी छात्रावस्था में आर्यसमाज के पावन सिद्धान्तों के प्रति अनुरक्त होकर देश की विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने का सत्संकल्प ग्रहण कर लिया था और जीवन की अन्तिम घड़ी तक इन्होंने असिधारा व्रत का पूर्ण निष्ठा सहित पालन किया। उन्होंने अपने पथ में न कभी पारिवारिक मोह को ही बाधा बनने दिया और न ही सांसारिक प्रलोभन ही उनकी राह रोक पाए।

शिक्षा समाप्ति के उपरांत आपने टेलीग्राफ का प्रशिक्षण प्राप्त कर पहले

अम्बाला के जिला कार्यालय में 30 रुपये मासिक पर और दिल्ली में 60 रुपये मासिक पर नौकरी की। किन्तु नौकरी ही तो उनके जीवन का आदर्श न था। अतएव मातृभूमि की स्वतन्त्रता के दीवाने पंडित काशीराम ने अमरीका की राह ली। स्वदेश की दासता के शूल की कसक ने उन्हें व्याकुल कर दिया था। अतः अमरीका में कई देशभक्त भारतीयों द्वारा संस्थापित क्रांतिकारी संगठन 'गदर' में आप भी सम्मिलित हो गए। 'गदर' नामक पत्रिका ने आपके हृदय में धधक रही देश भक्ति की अग्नि को और भी अधिक प्रज्ज्वलित कर दिया। अंग्रेज़ी राज्य सत्ता के विरुद्ध बमों का सहारा लेकर क्रांति की देवी को रिझाने का स्वप्न अपने नेत्रों में संजोकर आपने वहीं 200 रुपये मासिक पर एक बारूद की फैक्टरी में नौकरी आरम्भ कर दी। किन्तु यहाँ भी आपके मन में यही विचार कौंध उठा कि यह भी तो गुलामी का ही बंधन है। अतएव आपने एक द्वीप में सोने की एक खान का ठेका ले लिया।

'गदर' संगठन ने अब स्वदेश में क्रांति का उद्घोष कर दल के अनेक सदस्यों को भारत भेजने की योजना बनाई। आप भी उन्हीं जवांमर्दों की एक टोली के नायक के रूप में 25-26 नवम्बर, 1914 को रवाना हुए। अंग्रेज़ी जहाजों में से एक में सवार होकर भारत के लिए चल पड़े। भारत पहुँचने पर एक बार पुनः अपनी जन्म भूमि के दर्शन करने की भावना उनके हृदय में उभरी और आप अपनी जन्मस्थली मंडौली जा पहुँचे। ग्राम के आबाल वृद्ध नर-नारी उनसे भेंट करने के लिए उसके गृह आंगन में एकत्रित हो गये। अवसर को अनुकूल समझ कर उसने अपने घर पर आन्दोलन पर एक जनसमूह के समक्ष स्वतन्त्रता की महत्त और गदर आन्दोलन पर एकक विस्तृत व्याख्यान भी दिया।

अपनी जन्म भूमि के दर्शन की लालसा तो उसने पूर्ण कर ली थी। उसका अपना कर्त्तव्य पुकार रहा था। अतः उसने अपने पिताजी के चरण स्पर्श कर उनसे यह कहते हुए विदाई ली–

लाहौर के नेशनल बैंक में मेरी 30,000 रुपये की पूंजी जमा है। मैं उस वापस लेकर शीघ्र ही ग्राम वापस आ जाऊँगा।

उसने ग्राम से अब जो विदाई ली वही उसकी अंतिम विदाई थी, क्योंकि वे लाहौर पहुँच कर पुनः अपने क्रांतिधर्मी बंधु-बांधवों से आ मिले। निर्धारित कार्यक्रमानुसार कई अन्य क्रांतिकारी सहयोगियों के साथ फिरोजपुर के लिए

प्रस्थान करना पड़ा। फिरोज़पुर पहुँचते ही इन संदिग्ध व्यक्तियों को बंदी बनाने का प्रयास किया तो कई क्रांतिकारियों की पिस्तौलें दग उठी। एक गोली पुलिस दल के प्रमुख थानेदार के भी वक्षस्थल को भेद गई और वह वहीं मर गया। गोली चलाते हुए क्रांतिकारियों की यह टोली घटनास्थल से भागने में सफल हो गई। इनमें से 13 ने फिरोजपुर के वनखंड में शरण ली। परन्तु वहाँ भी पुलिस से इनकी पुनः मुठभेड़ हो गई। दोनों ओर से डट कर गोलियाँ चलीं और इन 13 में से 6 भाग निकलने में सफल हो गए तो सात को बंदी बनाने में पुलिस सफल हो गई। इन्हीं में से एक थे पंडित काशीरामम जी।

इन सातों को ही कारागार में अलग-अलग रखा गया। उनके विरुद्ध एक गाँव में डकैती डालने का मिथ्या आरोप लगाकर अभियोग चलाया गया। 15 मास के न्याय नाटक के उपरांत अप्रैल 195 में अन सातों को ही मृत्यु दंड सुना दिया गया। मई 1915 में ये स्वातन्त्र्य ध्रुव के चतुर्धिक परिक्रमा करते सात ऋषि हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर झूलकर अमर हो गये।

वध स्तम्भ से कुछ समय पूर्व जब उसके पिता आपसे भेंट करने हेतु कारागार में आए तो उसने अपनी मनोभावना इन शब्दों में व्यक्त की थी–

आप परम पिता परमात्मा पर विश्वास कीजिए। उसी की कृपा का यह परिणाम है कि मुझे मातृभूमि के लिए काम आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

विधि की विडम्बना। स्वदेश के लिए पंडित काशीराम ने अपना जीवन प्रसून समर्पित कर जिस ग्राम को इतिहास में अमर सीन प्राप्त करा दिया, उसी ग्राम के वासियों ने उनकी फाँसी पर ''डाकू को फांसी हो गई'' कहकर हर्षोल्लास व्यक्त किया और अंग्रेज़ी सत्ता के न्याय की भी बलिहारी, जिसने ग्राम की डकैती और हत्या के वास्तविक अपराधियों के मिल जाने पर इतनी घोषणा करके ही न्याय की इतिश्री मान ली–

जो सात व्यक्ति इससे पूर्व फाँसी पर चढ़ाए गए थे वे वास्तविक रूप से अपराधी नहीं थे। वास्तविक अपराधी अब फाँसी पर चढ़ाए जा रहे हैं।

पंडित काशीराम अपना जीवन पुष्प मातृभूमि के चरणों में चढ़ा गए और स्वदेश की स्वतन्त्रत के महायज्ञ की ज्वाला और अधिक धधका गए।

14. करतार सिंह

पंजाब ने यों तो भारतवर्ष के इतिहास को बहुत से वीर दिए हैं, परन्तु जिस युग का जिक्र हम कर रहे हैं उस युग में देश के लिए सिर कटाने वाले सरदारों में शायद करतार सिंह सब से सब कम उम्र के थे इसलिए हम उनकी जीवनी की कुछ विस्तृत आलोचना करेंगे। करतार सिंह का जन्म 1866 ई. में पंजाब प्रांत के लुधियाना जिले के सरावा नामक गाँव में हुआ था। उसके पिता का नाम सरदार मंगलसिंह था, लड़कपन में ही करतान सिंह को पितृवियोग हुआ। करतार के अभिभावन उनके दादा ही थे। उन्होंने बचपन से ही उनका पालन-पोषण किया तथा शिक्षा आदि दी। लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में उसे दाखिल कराया गया। किन्तु वे स्वभाव के ऊद्यमी थे। पढ़ने-लिखने में उनका मन न लगता था। वे खेलों तथा उद्यम में सबसे आगे रहते थे। एक तरह से लड़कों के स्वाभाविक नेता थे। करतार की स्कूली शिक्षा अभी पूर्ण भी नहीं हुई थी कि वे उड़ीसा चले गये। वहीं उसने एण्ट्रेस पास किया और उनकी रुचि राजनैतिक साहित्य की ओर मुड़ी। दिल में विपत्तियों में कूद पड़ने की लालसा तो थी ही तिस पर उन दिनों सैकड़ों पंजाबी समुद्र लांघकर अमरीका जा रहे थे। करतार को भी सूझा कि वे भी ऐसा क्यों न करें। बस उसने अपने दादा जी से कहा और दादा जी भी राजी हो गए। करतान सिंह अमेरिका गया।

करतार सिंह ने अमेरिका जाकर देखा कि पश्चिम के लोग यों तो हर वक्त आज़ादी, भ्रातृत्व आदि शब्द अपने मुँह में रखते हैं, किन्तु भारतीयों से घृणा करते हैं। उन्होंने गहराई से सोचा तो समझ गए कि भारतीयों से ये लोग जो घृणा करते हैं, इसकी वजह है कि भारतवासी गुलाम हैं। इस प्रकार बड़ी अच्छी माली हालत होने पर भी गुलामी की ग्लानि उन पर हमेशा रहने लगी वे अपने साथी भारतीयों से सदा इस बात की आलोचना किया करते कि गुलाी कैसे दूर हो। सच बात यह है कि वे कुछ करने के लिए छटपटाने लगे, किन्तु ऐसा कोई रास्ता ही नहीं मालूम होता था। इतन में पंजाब से निकाले हुए श्री भगवानसिंह आ पहुँचे। एक तजुर्बेकार व्यक्ति के आ जाने से सब काम चमक गया और अमेरिका के भारतवासियों में जोरों से काम होने लगा। दल

की ओर से एक अखबार 'गदर' निकाला जाने लगा। करतार सिंह इसके सम्पादकों में थे। 'गदर' अख़बार का सम्पादक केवल सम्पादक ही नहीं था, बल्कि सम्पादक खुद ही कम्पोज करता मशीन चलाता छापता और बेचा करता था। करतार सिंह इस अख़बार पर मेहनत करते कभी ऊबता नहीं था। बराबर हँसता और गाता रहता था। करतारसिंह ने इस प्रकार छापने का काम तो सीख ही लिया, साथ ही अलग से जहाज के भी सारे काम सीखे।

जब महायुद्ध छिड़ तो करतार सिंह ने कहा—अब विदेश में रहने कका कोई अर्थ नहीं होता, यही तो मौका है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस वक़्त एक मुसीबत की गिरफ्त में है। देश में क्रांति की तैयारी होनी चाहिए। उस जमाने में देश में लौटना खतरे से खाली नहीं था। जो आता था, वही करीब-करीब भारत रक्षा कानून में गिरफ़्तार कर लिया जाता था, किन्तु करतार सिंह किसी तरह चक्कर से भारत की भूमि पर पहुँच गया। उस दिन से करतार सिंह के लिए बैठना हराम हो गया। वे सारे देश का दौरा करने लगा। याद रहे कि उस समय करतारसिंह की उम्र केवल अठारह साल की थी। करतार सिंह रासबिहारी से बनारस में मिले थे। रासबिहारी ने उनसे कहा—जाओ, पंजाब को तैयार करो इधर हम तैयार हो रहे हैं।' करतार पंजाब चले गए और वहाँ के संगठन को मजबूत बनाने लगा। शस्त्र इकट्ठे होने लगे, दल की नई-नई शाखाएं खोली जाने लगीं। धन एकत्र करने के लिए डाके डाले गए।

21 फरवरी 1915 का दिन सारे भारत में क्रांति के लिए मुकर्रर था। करतारसिंह इसके पहले ही लाहौर छावनी मेगजीन पर हमला करने वाले थे। एक सिपाही उनसे मिल गया था। उसने वादा किया था कि समय उपस्थित होने पर वह उन्हें मेगजीन की कुंजी दे देगा। किन्तु करतार जब वहाँ दल बल सहित पहुँचे तो मालूम हुआ कि वह सिपाही एक दिन पहले बदल गया। किन्तु इस प्रकार निराश होने पर उनका दिल नहीं टूटा। वे पिंग्ले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों की गश्त करने निकल पड़े। छावनियों में कमेटियाँ बन गई थीं। 21 फरवरी को विद्रोह होना निश्चित था, इसी बीच में दल के ही एक व्यक्ति कृपालसिंह ने सारा रहस्य खोलकर सरकार के सामने रख दिया। ब्रिटिश सरकार कुछ इस प्रकार की

बातों के अस्तित्व का मन ही मन अनुमान लगा रही थी। इतने में यह भांडाफोड़ हो गया। बस फिर क्या था, दमन चक्र बड़ा जोरों से चलने लगा गिरफ़्तारियों की धूम मच गई, पुलिस का राज्य हो गया। जहाँ-जहाँ छावनियों में शक था कि वहाँ फौजी विद्रोह में भाग लेंगे, वहाँ सारी फौज के शस्त्र ही छीन लिये गए। इन सब बातों से इतनी गड़बड़ी फैल गई कि भगदड़ मच गई, काम कौन करता?

करतार सिंह को भी लोगों ने भागने की सलाह दी। वे भागने के अलावा करते ही क्या? उस समय काम कुछ हो नहीं रहा था। कृपालसिंह की कृपा के कारण लोग इस प्रकार डर चुके थे कि कोई किसी की सुनने को तैयार न था। इस हालत में करतार सिंह भी दो साथियों सहित ब्रिटिश भारत के बाहर पहुँचे। अब उन पर कोई विपत्ति नहीं थी, न आ सकती थी, क्योंकि उनका पता किसी को भी मालूम नहीं था, परन्तु इस प्रकार इतने ही से उनके मन को शान्ति नहीं मिली। वे भावुक तो थे ही, उन्होंने सोचा इस प्रकार भागने से क्या हासिल होगा? जब एक साथ लड़े तो एक साथ विपत्ति का सामना भी करेंगे। बस उन्होंन अपनी यात्रा की दिशा बदल दी। ऐसी जगह पर आते ही जहाँ लोग उन्हें जानते थे, वे गिरफ़्तार कर लिए गए और जेल पहुँचाए गए। इस प्रकार निश्चित गिरफ़्तारी में अपने को झोंक देना बेवकूफी भले ही हो, किन्तु इसमें जो बहादुरी है, उसकी हम किए बिना रह नहीं सकते।

जेल में भी वह चिर विद्रोही चुप न रह सका। वहाँ उसने सब साथियों को इस बात पर राजी कर लिया कि जेल से भाग चला जाये और बाहर चलकर लाहौर छावनी मेगज़ीन पर कब्ज़ा कर लिया जाए। फिर क्या है? लड़ाई छेड़ दी जाए। करतार सिंह की यह योजना भी सफल न हो सकी। भेद खुल गया और सब को बेड़ियां पड़ गई। कहा जाता है कि करतार सिंह की सुराही के नीचे जमीन में सब औज़ार बरामद हो गए।

करतार सिंह ने अदालत में अपने से सम्बन्ध रखने वाली सब बातों को स्वीकार किया। वीर करतार की यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि आखिर इन बातों को करके उसने कौन-सा बुरा काम किया। उसे न तो यह पता था और न इसकी कोई परवाह थी कि उसका मुक़द्दमा बिगड़ जाएगा। सच बात

तो यह है कि वह मुक़द्दमे में विश्वास ही नहीं रखता था। उसने सब बातें कबूल करने के अनन्तर यह कहा–

मैं जानता हूँ, मैंने जिन बातों को कबूल किया है उनके दो ही नतीजे हो सकते हैं कालापानी या फांसी। इन दो बातों में मैं फांसी को ही तरजीह दूंगा क्योंकि उसके बाद फिर नया शरीर पाकर मैं अपने देश की सेवा कर सकूंगा। यदि मैं भाग्यवश अगले जन्म में स्त्री ही होऊँ तो अपनी कोख से विद्रोही सन्तान को पैदा करूँगा।

करतार की बातें सच थीं। जज ने उसे फांसी की सज़ा दी। फांसी घर में उसका वजन दस पौंड बढ़ गया था।.....

फांसी की सज़ा के बाद करतान सिंह फांसी घर में बंद थे उनके माथे पर न बल था, न भय। उनके दादा आये और बोले–

'करतार तुम फाँसी किन के लिए जा रहे हो। वे तो सब तुम्हें गालियां दे रहे हैं।

करतार के माथे पर एक बल आया परन्तु क्षणभर के लिए, वाकई यह दुःख की बात थी जिनके लिए वह यहाँ बंद था, वे ही उसे बुरा कहें। फिर भी करतार दबने वाला या हिम्मत हार जाने वाला जीव नहीं था। उसने अपने एक दो मरे हुए रिश्तेदारों का नाम लेकर पूछा वे कहां गए? दादा ने कहा व मर गए। इस पर करतार ने कहा वे मर गए। हम भी मरने जा रहे हैं, फिर नई बात क्या है?

(क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

15. भाई परमानन्द

गुरु तेगबहादुर के भी एक दिन पूर्व अर्थात् 16 दिसम्बर 1675 को भारत की ऐतिहासिक नगरी दिल्ली के ऐतिहासिक फव्वारे पर आरे से शीश चिरवाकर स्वधर्म की रक्षा का महान् संकल्प पूर्ण कर हुतात्मा बने भाई मतिदास के कुल में ही लगभग दो शताब्दी के उपरान्त अर्थात् 1870 में, जेहलम जिले में एक महान् पुरुष ने जन्म लिया था। वह महापुरुष था भाई परमानन्द।

अपने स्वनामधन्य पूर्वजों के बलिदान का तमगा मात्र छाती स्वयं के बड़प्पन की डोंडी पीटने वाले नेता थे भाई परमानन्द, अपितु श्रद्धा, निष्ठा और निर्भीकता भी उन्हें अपनी वंश परम्परा से ही प्राप्त हुई थी। वीरता का प्रदर्शन कर फाँसी के फंदे को चूम लेना तो महानता का द्योतक है ही परन्तु आजीवन अपनों और परायों का वैर विरोध सहन करते हुए भी अपने जीवन में कभी निराशा को क्षण मात्र के लिए भी प्रभावी न होने देना और भी अधिक महानता है। भाई जी का सारा जीवन इसी महानता की ज्वलंत गाथा है।

किशोरावस्था में ही, जब भाई परमानन्द चक्रवाल (जिला जेहलम) में मिडिल स्कूल के छात्र थे, तभी वह आर्य समाज के सम्पर्क में आये और वहीं से उसने अपना सारा जीवन आर्य जाति की सेवा में लगा देने का संकल्प भी ग्रहण कर लिया। यही कारण था कि एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर आपने ऐश्वर्य और सुख-सुविधाओं का जीवन यापन करने की दृष्टि से अंग्रेज़ी सरकार की नौकरी करने के प्रलोभन को अपने मन से सर्वथा के लिए दूर हटा दिया। उसके स्थान पर आपन केवल 75 रुपया मासिक के गुजारे भत्ते पर डी.ए.वी. कॉलेज की आजीवन सदस्यता ग्रहण करने को ही वरेण्य माना।

उन दिनों आर्य समाज ही पंजाब में राष्ट्रीय जाग्रति का अग्रदूत था और डी.ए.वी. कॉलेज (जो सरकार से एक दमड़ी को भी सहायता न लेते हुए बनाया गया था) वह वायुमंडल प्रस्तुत कर रहा था जिसमें आत्म निर्भरता को प्रस्फुरण प्राप्त होता है। भाई परमानन्द और लाला लाजपतराय के सम्मिलित

श्रम का ही यह प्रतिफल था कि यह कॉलेज एक ऐसा केन्द्र बन गया जिसमें प्रवाहित होने वाली सममीर शुष्क हृदय में भी राष्ट्रभक्ति और सामाजिक सुधार की भावनाओं को अंकुरित किया जाता था ।

परन्तु उन्हीं दिनों अफ्रीका के प्रवासी भारतीय की ओर से एक मिशनरी वहाँ भेजने का अनुरोध प्राप्त हुआ । इससे पूर्व के तीन वर्षों में पंजाब की प्रायः प्रत्येक आर्यसमाज में भाई परमानन्द की अमरवाणी गूँज चुकी थीं । उनके अन्तस्तल में धधक रही आर्य जाति को जगाने की प्रचण्ड अग्नि से उस समय के सभी मुख्य आर्यजन अवगत थे । अतः महात्मा हंसराज ने भाई जी को ही विदेशों में आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के लिए सर्वाधिक योग्य प्रचारक समझा । भाई जी अफ्रीकी देशों में आर्य समाज और वैदिक धर्म के प्रचारार्थ प्रस्थान कर गए और इस प्रकार उनके जीवन को एक नाटकीय मोडत्र प्राप्त हो गया ।

वैदिक मिशनरी के रूप में अपने प्रथम अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधी जी से भी उसकी भेंट हो गई और वह जोहान्सबर्ग में एक मास तक उन्हीं के पास ठहरे । ये दोनों महामानव एक दूसरे की ध्येय निष्ठा से प्रभावित हुए बिना न रह पाए । जब राजनैतिक चिंतन के अन्तर के इन दोनों महापुरुषों के जीवन और एक दूसरे के विचारों में काफी बड़ी दूरी ला दी तब भी उनका मैत्री भाव पूर्ववत् ही बना रहा । गांधी जी ने बाद में भाई परमानन्द के संबंध अपने पत्र 'यंग इंडिया' में लिखा तो उसने ही उनका परिचय महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त एवं क्रांतिकारियों के प्रमुख मार्गदर्शक श्याम जी कृष्ण वर्मा से भी कराया । बताया जाता हे कि श्री वर्मा ने ही भाई जी को बम बनाने की तरकीब से संबंधित एक काग़ज़ दिया था, जो उनके थैले से बरामद होने के कारण उनके विरुद्ध प्रथम मामला दायर होने का आधार बना ।

भाई जी को राष्ट्रभक्ति के पावन अपराध में मृत्युदंड सुनाया गया था, बाद में उनकी सजा आजन्म कारावास में बदल गई और इस महान् राष्ट्रवादी नेता को अंडमान की कालकोठरी में अपनी जवानी गलाने पर बाध्य होना

पड़ा । उन्हीं दिनों सरकारी प्रकोप से भयभीत कॉलेज के अधिकारियों ने भाई जी की आजीवन सदस्यता भी समाप्त कर दी और उनके परिवार ने उन दिनों जो अवर्णनीय यातनाएं झेलीं उनका रोमांचक वर्णन ख्यातिनामा भारतभक्त श्री सी.एफ. एन्ड्रूज ने किया है । उन आपदा के दिनों में भाई जी की धर्मपत्नी के पास वे अनेकों मानपत्र और प्रशंसापत्र ही अपने पति की एकमात्र धरोहर थे जो भाई परमानन्द को अफ्रीका के विभिन्न देशों में वहाँ के प्रवासी भारतीयों द्वारा समर्पित किए गए थे ।

भाई जी को अंडमान की कालकोठरियों में वर्षों तक यातनाएं सहन करनी पड़ी । भाई जी ने महायुद्ध की समाप्ति के बाद स्व-जीवन को स्वेच्छया समर्पित करने के लिए अन्नजल का भी त्याग कर दिया था । परन्तु एक सप्ताह के बाद ही उसे बलात् (जबरदस्ती) भोजन दिया जाने लगा । इसी ढंग से दो मास बीते और उनका वजन 82 पौंड घट गया । दीनबंधु एन्ड्रूज भाई जी को अंडमान से मुक्ति दिलाने हेतु प्रयत्नशील थे और अन्ततः व अंडमान की कालकोठरी से रिहा कर दिए गए । उनकी रिहाई पर उन्हें विदाई देने के लिए जो लोग उपस्थित थे उन सभी के नेत्र सजल हो उठे थे ।

इस प्रकार भाई जी अपनी कष्टों से जर्जर हुई क्षीण काया लिये 1919 में पुनः स्वदेश आ गए । परन्तु काले पानी की कठोर यातनाएं भी स्वराष्ट्र को स्वतन्त्र देखने की उनकी दुर्दम्य आकांक्षा को पराभूत नहीं कर पाई थी । अतः उन्होंने स्वधर्म और स्वदेश सेवा के अपने व्रत के परिपालनार्थ एक नवीन योजना बनाई । वे अपने व्यवसाय में एक समय के सहयोगी सरदार हुकमसिंह के पास हरिद्वार पहुँच और उनके समक्ष अपनी योजना इन शब्दों में प्रस्तुत की–

सरदार जी, ऐसा प्रतीत होता है कि इस जीवन में तो मुझे यह सरकार स्वदेश की सेवा का कार्य नहीं करने देगी । अतः आप मेरे साथ गंगोत्री यमुनोत्री की यात्रा के बहाने चलिए । बाद में आप यह समाचार भिजवा देना कि पर्वतीय

भाग में भाई परमानन्द का निधन हो गया। फिर मैं वापस लौट कर किसी अन्य नाम से पुनः देश सेवा का कार्य आरम्भ कर दूंगा।

जिस नाम के लिए आज के नेता मारे-मारे फिरते हैं, उसे भी भुला और भुलवाकर भाई जी के राष्ट्र कार्य के लिए जीवन वारने की प्रबल आकांक्षा का ही परिचायक थी उनकी यह योजना। भाई जी स्वदेश को विदेशी दासता से मुक्ति दिलाने हेतु हिन्दू रियासतों का सहयोग पाने और विशेषतः नेपाल के शासकों को इस दिशा में सक्रिय बनाने की दृष्टि से भी कई ठोस पग उठाए थे। भाई परमानन्द ने देव दयानन्द के महान् विचारों में प्रेरणा प्राप्त की थी। उनके जीवन का आदर्श वह महान् कर्मयोगी ही था जिसने सत्य की पूजा हेतु सत्ता और सम्मान को सदैव ठुकराया था। जब गाँधी जी ने विदेशी शिक्षा के बहिष्कार का आन्दोलन छेड़ा तो लाहौर में भी नेशनल कॉलेज की स्थापना हुई। स्वयं गांधी जी, लाला लाजपतराय एवं प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अनुरोध पर भाई परमानन्द ने उसका उपकुलपति, शिक्षा मंडल का अध्यक्ष व इतिहास का प्राध्यापक पद स्वीकार कर लिया। इसी कॉलेज में उन्होंने अमर हुतात्मा सरदार भगतसिंह के हृदय में देशभक्ति का बीजारोपण किया था।

परन्तु जब मुसलमानों को काँग्रेस में लाने की आकांक्षा से महात्मा गांधी ने खिलाफत के साम्प्रदायिक उद्देश्य से स्वयं को जोड़ दिया तो भाई जी की आत्मा विद्रोह कर उठी। उन्होंने समझ लिया कि वर्ग विशेष के तुष्टीकरण का यह मार्ग राष्ट्रीयता के आन्दोलन को गतिमान् करने के स्थान पर क्षतिग्रस्त ही करेगा। अतःएव पद, सम्मान और लोकेषण सभी से विमुख होकर उसने गांधी जी से अपना मतभेद स्पष्टतः व्यक्त किया। वह अभी तक अंग्रेज़ी सरकार का ही कोपभातन था अब उसने उस समय बह रही गांधीवाद की प्रचण्ड आंधी को भी सहन करना सहर्ष स्वीकार कर लिया और वह हिन्दू संगठन, शुद्धि और समाज सुधार के कार्यक्रम को नवीन गति प्रदान करने के लिए हिन्दू महासभा के मंचपर आ गया। उसी केन्द्रीय असेम्बली का सदस्य बनने का अवसर मिला तो वहाँ भी वह निर्भीकतापूर्वक सत्य राष्ट्रीयता का ही उद्घोष करता रहा। उसने साम्प्रदायिकता का आरोप सहकर भी समय के

प्रवाह में बह चलने और सस्ती ख्याति की प्राप्ति का अपना जीवन लक्ष्य न बनने दिया ।

गांधी जी ने जब इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था–

हिन्दू मुस्लिम एकता के बिना स्वराज्य की प्रगति सम्भव नहीं तो इस महान् देशभक्त ने अपनी अडिग मान्यता के आधार पर यह उद्घोष किया कि हिन्दुओं का प्रबल संगठन ही स्वराज्य प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है । क्योंकि यदि हिन्दू समाज संगठित हुआ तो अन्य सम्प्रदाय के लोग भी स्वाभाविक रूप से ही स्वराज्य के अनुष्ठान में सहयोगी बनेंगे । परन्तु यदि उनके तुष्टिकरण की प्रक्रिया जारी रही तो उनकी मांगों का सिलसिला बढ़ते-बढ़ते पृथक् होमलैंड की मांग तक पहुँचेगा और हिन्दू होने से उनका पृथक् होमलैंड बनने से रोक न सकेंगे ।

वह हिन्दू महासभा के आन्दोलनों में जी-जान से जुट गया परन्तु हिन्दू समाज के संगठित न हो पाने के कारण इस दूरदर्शी नेता की आशंका ही अन्ततः सही सिद्ध हुई । 1932 में जब कांग्रेस ने साम्प्रदायकि एवार्ड को स्वीकार किया तो भाई जी हिन्दू महासभा के लिए पूर्णतः समर्पित हो गए । 1934 में वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी बने और फिर जीवन की अन्तिम घड़ी तक वे इसी संस्था के साथ जुड़े रहे ।

भारत की विभाजन की आशंका उन्होंने 1945 में ही व्यक्त कर दी थी । यद्यपि गांधी जी यह घोषणा कर रहे थे कि पाकिस्तान की कल्पना को मूर्खतापूर्ण बता रहे थे । परन्तु उसी वर्ष 7 अक्तूबर को भाई परमानन्द ने लिखा था–

एक ओर श्री जवाहर लाल नेहरू यह घोषण कर रहे थे कि वह तथा उनके मित्र देश का विभाजन कदापि नहीं होने देंगे । किन्तु दूसरी ओर उसी सांस में यह भी कहा जा रहा था कि यदि मुसलमान भारत में नहीं रहना चाहते तो उन्हें रहने के लिए बाध्य भी नहीं किया जा सकता । अतः मैं यहाँ और यह कहने की अनुमति चाहूँगा कि वह समय निकट आ रहा है कि जब इन सब बातों के बावजूद यही नेता पाकिस्तान के निर्माण की स्वीकृति प्रदान कर देंगे ।

इतिहास ने भाई जी की भविष्यवाणी को ही अन्ततः सिद्ध कर दिया। काश! ऐसा न होता। 18 दिसम्बर 1947 को उस महान् नेता ने जालंधर में अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। प्रातः स्मरणीय देवता स्वरूप भाई परमानन्द उस महान् देश के उन गिने चुने महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने एक उच्चकोटि के संन्यासी के तुल्य अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सूर्य के तुल्य दूसरों को सही मार्ग दर्शन दिया स्वयं धार्मिक जीवन की उपलब्धि कर हज़ारों को सन्मार्ग पर चलाया। परोपकार ही उनका जीवन व्रत था और आर्यजाति व स्वदेश की हितकामना ही एक मात्र साधना।

16. सरदार ऊधम सिंह

साहस, शौर्य और अत्याखर के विरुद्ध प्रतिशोध की प्रतिमूर्ति के प्रतीक वीर ऊद्यम सिंह का नाम आज़ादी के इतिहास में सदा सम्मान के साथ याद किया जाता रहेगा । भारत माता के इस सपूत ने जलियांवाला बाग़ में निहत्थे हज़ारों लोगों को मौत के घाट उतारने वाले अत्याचारों जनरल डायर को उसी के देश में जाकर गोली से उड़ाकर बदला लिया था और इस प्रकार देश के स्वाभिमान को जीवन्त रखा था ।

ऊधम सिंह का जन्म 26.12.1899 को पंजाब की पटियाला रियासत के सुनाम नामक कस्बे में कम्बोज वंश में हुआ था । उनके पिता का नाम रहलसिंह था । वे रेलवे में गेटमैंन थे । बचपन में ऊधमसिंह की माता का देहान्त होने के बाद उनके पिता अमृतसर में आकर रहने लगे । कुछ समय बाद उनके पिात का भी देहान्त हो गया । अब ऊधमसिंह और उनके बड़े भाई साधु सिंह अनाथ हो गये । जीवन निर्वाह का उपाय न देख रिश्तेदारों ने दोनों भाइयों को अनाथालय में भरती करा दिया । कुछ समय बाद बड़े भाई साधुसिंह का भी देहान्त हो गया । ऊधम सिंह बिल्कुल अकेला रह गया । उसने स्वयं को निराशा में डूबने नहीं दिया । साहस से काम लिया और एन्ट्रेस परीक्षा पास कर ली । साथ में कुछ कारीगरी का काम भी सीख लिया ।

इस बीच भारत की आज़ादी के इतिहास में एक बर्बर और महत्वपूर्ण घटना घटी जो ऊधम सिंह के युवा मन पर गहरा और अमिट प्रभाव छोड़ गई । रोल्ट एक्ट के विरोध में देश भर में व्यापक उत्तेजना फैली हुई थी । वैशाखी का पवित्र पर्व था । पंजाब में 13.4.1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग़ में रौलट एक्ट के विरोध में विशाल जनसभा हो रही थी जिसमें 25000 के लगभग बच्चे, बूढ़े , जवान, स्त्रियाँ सभी उत्साह से सम्मिलित हुए थे । सभी लोग निहत्थे थे, शांत थे । सभा शान्तिपूर्वक चल रही थी । कुछ ही देर में बर्बर स्वभाव के लिए बदनाम अंग्रेज़ फौज़ का जनरल डायर गोरी फौज़ को लेकर आया और सभा स्थल को घेर लिया । बिना किसी

चेतावनी के उसने निहत्थे लोगों पर गोलियां बरसाना शुरू कर दिया। बाग़ से निकलने का एक ही तंग रास्ता था। गोरी पल्टन उस रास्ते की ओर खड़ी हो गई और उधर आने वालों तथा दीवार फांदकर भागने वालों पर गोलियां बरसाई गई।

पन्द्रह मिनट में 1950 राउंड गोलियां चलाई गई। जलियांवाला बाग़ में अब सभा की जगह लाशों के ढेर लग गये थे। गोलियां बरसाकर जनरल डायर चलता बना। घायल बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं, युवाओं की चीखों-कराहों और बहते खून की धाराओं से सारा वातावरण नरकमय दिखाई पड़ता ाि। इस कांड में लगभग 1000 लोग मारे गये थे और कई हज़ार घायल हुए थे। संसार में ऐसा नृशंस कांड शायद ही कोई हुआ हो। सरदार ऊधमसिंह ने इस कांड को अपनही आँखों से देखा था। गोलियों से घायल हुए लोगों को संभालने और सेवा करने की जिम्मेदारी अनाथालाय के विद्यार्थियों को भी सौंपी गई थी। सरदार ऊधम सिंह भी एक थे। बस इस दर्दनाक दृश्य को देखकर उसी दिन ऊधमसिंह के मन में आततायी डायर से बदला लेने का विचार बैठ गया था। उसने निश्चय कर लिया था कि इस नरक जैसी गुलामी में जीने से तो देश के लिए बलिदान हो जाना अच्छा है और इस आततायी डायर को जीवित नहीं छोड़ना चाहिये।

इस बीच उनका एक लकड़ी के ठेकेदार से सम्पर्क हुआ। उसका अमेरीका में कारखाना था। वे उसके साथ अमेरीका चले गये। कुछ ही समय में अपनी मेहनत से वे नौकर से कारखाने के भागीदार बन गये। उस समय भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन जोरों पर था। भारत के स्वतन्त्रता सेनानी आज़ादी के लिए लाठी-गोली खा रहे थे, फांसी के फंदे पर झूल रहे थे, बलिदान पर बलिदान हो रहे थे और अंग्रेज़ों के क्रूर अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। अमेरिका के समाचार पत्र में इस प्रकार के दर्द भरे समाचार पढ़कर उनका हृदय कसमसा उठता था। सरदार भगतसिंह के साथ पत्र व्यवहार ने उस कसमकसाहट को और बढ़ा दिया। वे आज़ादी के आन्दोलन में भाग लेने के लिए अमेरिका में जमा जमाया धंधा छोड़कर आ गये। भारत आकर उसने

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक रूप में अपना नया नाम रखा—'राम मुहम्मद आज़ाद' और आज़ादी के आन्दोलन में कूद पड़ा। शीघ्र ही उसको गिरफ़्तार कर लिया और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उन्हें चार वर्ष के कारावास की सज़ा मिली।

चार वर्ष बाद ऊधमसिंह जेल से छूटे। इस बीच डायर इंग्लैंड जा चुका था। अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लक्ष्य से ऊधमसिंह इंग्लैंड पहुँच गया। वह वहाँ छह-सात वर्षों तक रहा और इस अवसर की प्रतीक्षा करता रहा कि आततायी डायर से बदला लेने का सुनिश्चित मौका कब मिले। फिर एक दिन वह मौका मिल ही गया। 23.3.1940 के दिन लंदन के 'इंडिया हाउस' में एक सभा का आयोजन किया गया। उसका मुख्य वक्ता डायर था। ऊधम सिंह भी श्रोता के रूप में सभा में पहुँच गया और उपयुक्त स्थान पर बैठ गया। वक्ता के रूप में डायर की बारी आई। बड़ी अकड़ के साथ वह खड़ा हुआ और बढ़े अभिमान के साथ अपने क्रूर कारणों की शेखी मारने लगा। आज़ादी के आन्दोलन में भाग लेने वाले भारतीय नेताओं के प्रति वह अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर रहा था।

तभी ठांय.....ठांय, गोलियों की आवाज़ गूंजी।

आततायी और अभिमानी डायर खून से लथपथ मंच पर गिर पड़ा था। उसकी अभद्र वाणी शान्त हो चुकी थी और दुष्ट हाथ शिथिल हो चुके थे। सभा में भगदड़ मच गई। लोग वहाँ से भाग निकले।

.....परन्तु एक युवक वहाँ पिस्तौल हाथ में लिए निडर खड़ा था। वह युवक था वीर ऊधम सिंह। चाहता तो वह भागकर छिप सकता था किन्तु भागने को वह कायरता समझता था, इसलिए भागा नहीं, किसी और को भी उसने कुछ नहीं कहा।

ऊधम सिंह को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। अदालत

में मुक़द्दमा चला । मजिस्ट्रेट ने पूछा—तुमने डायर की हत्या क्यों की?' ऊधम सिंह ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया—

उस पापी ने मेरे देश के हज़ारों निहत्थे और शान्त लोगों को हत्या की थी । उस हत्यारे से बदला लेना मेरा राष्ट्रीय कर्त्तव्य था । मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा किया है । मुझे न इसका अफसोस है और न मृत्युदण्ड का भय । देश के स्वाभिमान के लिए मैं खुशी-खुशी बलिदान होने को तैयार हूँ ।

मजिस्ट्रेट ने ऊधम सिंह को मृत्युदण्ड की सज़ा सुनाई । 12.6.1940 को उसी वीर को लन्दन की पैटन विला जेल में फांसी पर लटका दिया गया । बलिदानियों की सूची में एक वीर का नाम और अंकित हो गया ।

17. शहीद खुशीराम

1919 का वर्ष हिन्दुस्तान के इतिहास में हमेशा याद रहेगा। हिन्दुस्तानी और विशेषतः पंजाबियों ने प्राणों पर खेलकर अंग्रेज़ों को जीत हासिल करवाई थी, लेकिन अहंकारी अंग्रेज़ों ने अहसान का खूब बदला चुकाया। रोल्ट-एक्ट पास कर दिया। तूफान मच गया। पंजाब में खास तौर पर जोश बढ़ गया। पंजाब में तो अभी पिछले युद्ध की याद ताजा थी, उन्हें रोल्ट-एक्ट देखकर बेहद दर्जे की हैरानी हुई। हड़तालें, जुलूस व मीटिंग होने लगी। जोश बहुत बड़ा। नौबत जलियांवाला और मार्शल ला तक आ गई। लोग डर गये। कौन कह सकता था कि निहत्थों पर भी गोली चलाई जा सकती है। आम लोगों ने गिरते-पड़ते पीठ में ही गोलियाँ खायी। लेकिन उनमें भी श्री खुशीराम जी शहीद ने छाती पर गोलियाँ खाकर कदम आगे बढ़ाया और बहादुरी की लाजवाब मिसाल कायम कर दी।

आपका जन्म 27 सावन, संवत, 1957 में गाँव सैदपुर, जिला झेलम में लाला भगवानदास के घर हुआ था। इनकी जाति अरोड़ थी। पैदा होने पर आपकी जन्म-पत्री बनाई गई और बताया गया कि वह बालक बड़ा बहादर और तगड़ा होगा और इसका नाम भी खूब प्रसिद्ध होगा। इसलिए उस समय आपका नाम भीमसेन रखा गया, लेकिन बाद में खुशीराम के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। आप अभी बहुत छोटे ही थे जब उसके पिता का देहान्त हो गया। आपका खानदान बहुत ग़रीब था और आपका पालन-पोषण लाहौर नवांकोट अनाथालय में हुआ था। वहीं पहले-पहल उसकी शिक्षा शुरू हुई। वक़्त गुजरता चला गया। आप फिर डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में पढ़ने लगा। 1919 में 19 वर्ष की आयु में उसने पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा दी थी और छुट्टियाँ बिताने जम्मू चला गया।

सुना कि 30 मार्च के बाद महात्मा गांधी ने आदेश दिया कि 3 अप्रैल को देश-भर में हड़ताल की जाये और जलस-जुलूस निकाले जायें। आप भी लाहौर पहुँचे। आकर पूरी तरह काम को सफल बनाने का प्रयत्न करने लगा। कॉलेजों के लड़कों ने नंगे सिर बड़े-बड़े जुलूस 'हाय-हाय रोल्ट एक्ट' कहते

हुए निकाले थे। यह सब आपके यत्नों का फल था। दो चार दिन बड़ी रौनक रही। 12 अप्रैल को बादशाही मस्जिद, लाहौर में जलसा हुआ। भीड़ का कोई शुमार न था। वहाँ हज़ारों आदमी थे। गर्मागर्म भाषण हुआ। धुआंधार भाषणों के बाद जुलूस बनाकर लोग शहर को चल पड़े। हीरामण्डी जब पहुँचे और शहर में घुसने लगे, उसी समय मुहम्मद अली सेना के साथ आगे तैनात था। उसने हुक्म दिया कि जुलूस को भंग कर दो। लेकिन व दिन बड़े अजीब थे। खुशीराम आगे-आगे झण्डा उठाये जा रहे थे और कहा, यह जुलूस कभी वापस नहीं लिया जा सकता और जुलूस की शक्ल में ही शहर में घुसेगा।

नवाब ने हवा में गोली चला दी। लोग भाग छूटे। शेरमर्द लाला खुशीराम ने गरजना की, एक बार तो लोगों को खूब लानत दी। और कहा, तुम्हें शर्म नहीं आती इस तरह गीदड़ों की तरह भागते हो। लोग एकत्र हो गये। लाला खुशी राम आगे जा रहा था। नवाब ने फिर गोलियां चलाई। इस बार गोली हवा में नहीं बल्कि सीधे महाशय खुशीराम की छाती में लगी। गोली लगी तो आप जख्मी शेर की तरह झपटकर आगे बढ़े और गोली लगी तो आप और आगे बढ़े। एक-एक कार सात गोलियां छाती में लगीं लेकिन खुशीराम का कदम आगे ही बढ़ता चला गया। आखिर आठवीं गोली माथे के दाईं ओर नवीं गोली बाईं ओर जा लगी। शेर तड़फकर गिर पड़ा। खुशीराम सदा की नींद सो गये, लेकिन आज भी उनका नाम जिन्दा है। उनकी बहादुरी व हिम्मत आज भी उसी तरह ताजा है। आपकी लाश का बड़ा भारी जुलूस निकला। आम ख्याल किया जाता है कि कम से कम पचास हजार लोग इस जुलूस में शामिल थे। इस तरह उस वीर ने अपने और अपने राष्ट्र के गौरव के लिए प्राणों की बाजी लगा दी और अपना नाम अमर गया।

(क्रांतिकारी भगतसिंह द्वारा लिखित)

18. रामप्रसाद बिस्मिल

आज की दिग्भ्रमित अवस्था में भी, जबकि किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का वायुमंडन चतुर्दिक व्याप्त दिखाई देता है, जिन कर्मयोगी हुतात्माओं के जीवन से पावन प्रेरणा ग्रहण कर स्वदेश की तरुण पीढ़ी राष्ट्र सेवा के पुनीत पथ पर स्वदेश के स्वर्णिम इतिहास का सृजन करने हेतु प्रतीत हो सकती है उनमें प्रथम श्रेणी में अंकित है, जिन स्वातन्त्र्य शलभों के नाम, उन्हीं में से एक थे रामप्रसाद बिस्मिल । विविधता में भी एकता के महान् प्रतीक ।

इस विलक्षण समाज सुधारक, विचारक, महान् क्रांतिकारी अमर हुतात्मा का जन्म हुआ था शाहजहाँपुर (उत्तरप्रदेश) में ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष एकादशी विक्रम संवत 1954 थी इनकी जन्म तिथि। इनके पिता पं. मुरलीधर तिवारी कचहरी में स्टाम्प पेपर बेचकर जीवन यापन करने वाले एक सामान्य श्रेणी के गृहस्थ थे। अपनी आत्मशक्ति में रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने परिवार की निर्धनता का वर्णन करते हुए लिखा था–

बाजरा, खुखनी, सामा, ज्वार आदि खाकर दिन काटने चाहे परन्तु फिर भी गुजारा न हुआ। तब आया, बथुआ, चना या दूसरा कोई साग, जो सबसे सस्ता अनाज हो, उसमें मिलाकर थोड़ा सा नमक डालकर उसे स्वयं दादी खातीं, बच्चों को चने जौ की रोटी देती।

परन्तु फिर समय ने नया मोड़ लिया और उसके पिता जी की आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार हो गया। इसलिए शिक्षा दीक्षा भी सुचारू रूप से सम्पन्न हो गई ।

रामप्रसाद जी एक निर्धन की संतान थे। परन्तु निर्धनता के विरुद्ध नारे लगाकर नहीं अपितु कठोर श्रम का सहारा लेकर उसने निर्धनता को पछाड़ कर अपना पथ प्रशस्त किया। गौ पालन उनकी प्रमुख रुचि और गौ स्तन से मुख लगाकर दुग्ध पान करना ही उसके उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य था। अनेक महापुरुषों की भाँति ही वह आरम्भिक जीवन भी एक प्रयोगात्मक कहानी का ही कथानक है। उपन्यास पढ़ने के व्यस्न ने उसको चोर बनाया और चोरी से

पिता कही सिगरेट पीने की ललक ने उसे पिता के हाथों कई बार पिटवाया। एक दिन तो इस पिटाई से इतने क्षुब्ध हो उठे कि घर से निकल पड़े और निरन्तर दो दिन चने-बूटे खाकर उदर की ज्वाला बुआई और यह अवधि एक वृक्ष के तले ही गुजार दी।

इसके पश्चात् उसकी जीवनयात्रा ने एक नया मोड़ ले लिया। वह आर्य समाज के सम्पर्क में आ गया। बस फिर क्या था पारसमणि का सम्पर्क पाकर लोहा कुन्दन बनकर दमक उठा। ''सत्यार्थप्रकाश' आदि सदग्रंथों का अध्ययन, आर्य कुमार सभा की संस्थापना और बुराइयों से लोहा लेने की अभिरुचि का ही जागरण हो गया। हथियार चलाने की अभिरुचि भी क्रमशः विकसित होती गई। ये सारी ही बातें आपके अनवरत मनोबल एवं अभ्युदय में सहायक सिद्ध हुई और फिर आपने सिर को भी हँसते-हँसते समर्पित कर दने का सत्संकल्प संजो लिया।

बिस्मिल के जीवन के निर्माण में उसकी वंदनीय माता का विशेष सहयोग रहा था तो धर्मगुरु स्वामी सोमदेव ने भी उनके जीवन को दिशा निर्देश दिया। उन्होंने ही महान् आर्य नेता और राष्ट्र भक्त देवता स्वरूप भाई परमानन्द को अंग्रेज़ी सत्ता द्वारा देशभक्ति के पावन अपराध में कालेपानी की सज़ा सुनाए जाने के तथ्य से बिस्मिल को अवगत कराया। गुरुदेव सोमदेव के निधन के उपरांत उसके जीवन में एक और मोड़ आया। वह लखनऊ में आयोजित हुए कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए पहुँचा और वहाँ ही उसका परिचय उस युग के मुख्य क्रांतिकारी नेता पं. गेंदालाल दीक्षित से हुआ। लखनऊ में हुआ यह काँग्रेस अधिवेश्न भी उसको जीवन के लिए महान् घटना थी। आप जीवन में पहली बार ट्रेन में सवार होकर लखनऊ पहुँचे थे? इस अधिवेशन की अध्यक्षता लोकमान्य तिलक को करनी थी। अपनी बहुलता के कारण माडरेट कांग्रेस जन लोकमान्य की एक बंद कार में बैठा कर अधिवेशन स्थल पर लाना चाहते थे परन्तु क्रांतिकारी वीरों की इच्छा थी अपने महान् नेता को सम्मान साज़ सज्जा सहित शोभायात्रा निकाल कर

नगर के मुख्य मार्गों से होते हुए अधिवेशन स्थल पर ले जाने की। जीत क्रांतिकारिकयों की हुई। रामप्रसाद बिस्मिल पहले युवक थे जो लोकमान्य को ले जाने वाली बंद कार के आगे लेट गए और चुनौती दे डाली कि मेरे ऊपर से होकर ही यह गुजर सकती है। तत्पश्चात् एक घोड़ा गाड़ी के अश्वों को निकालकर क्रांतिकारी युवकों ने स्वयं उसे अपने कंधों पर उठा लिया।

देखत ही देखते लोकमान्य को पुष्पों से लादकर तरुणों के कंधों के सहारे चल पड़ी। इस शोभायात्रा में लोकमान्य तिलक को एक देवता का सम्मान मिला। क्योंकि मार्ग में सैकड़ों लोगों ने उनकी गाड़ी के पहियों को धूली को अपने मस्तक पर श्रद्धा सहित लगाया तो अनेकों ने लोकमान्य तिलक पर बरसते फूलों को उठाकर उनकी पंखुड़ियों से अपने बालकों के लिए ताबीजों को सजाया। लखनऊ के इस कांग्रेस अधिवेशन में ही पंडित रामप्रसाद बिस्मिल को इस तथ्य की जानकारी मिली थी कि स्वदश में क्रांतिकारी दल भी सक्रिय है। बस वह भी उसी के सक्रिय सदस्य बन गए। दल के समक्ष आर्थिक कठिनाइयों का दुर्गम्य पर्वत उपस्थित था। बिस्मिल ने ''अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली? '' यह पुस्तक लिखकर आय प्राप्ति का साधन उपलब्ध कराया। इस पुस्तक को भारी ख्याति भी मिली। परन्तु कुछ ही समय के उपरांत अंग्रेज़ी सरकार ने इसे ज़ब्त कर दिया।

क्रांतिकारी दल 'ऐक्शन' के लिए शस्त्रास्त्र भी जुटाता रहा तो क्रांतिकारी साहित्य की युक्तिपूर्वक बिक्री जारी रखकर धन भी जुटाता रहा। विभिन्न योजनाएं क्रियान्वित रही परन्तु बिस्मिल नितांत कुशलता सहित पुलिस और गुप्तचर विभाग के हाथ आने से बचकर दल की शक्ति बढ़ाने में जुटा रहा। उन्हीं दिनों मैनपुरी षडयंत्र कांड हुआ तो पुलिस ने उसका भी वारन्ट जारी कर दिया। जब रामप्रसाद ने एक चरवाहे का रूप धारण कर वनखंड में पशु भी चराए और साथ ही समय निकाल कर क्रांतिकारी साहित्य का निर्माण भी करता रहा। पशुओं को चराने की इस अवधि में ही उसने बंगला पुस्तक 'निहलिस्ट रहस्य' का अनुवाद भी 'बालरोक्ति का कानून' तथा 'स्वदेश रंग' नामक पुस्तकों की भी रचना की। इतना ही नहीं अपितु

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में छद्म नामों से लेखादि लिखकर भी बिस्मिल क्रांति की पावन गंगा को प्रवाहित करने में संलग्न रहा। महान् कर्मयोगी दयानन्द के दिव्य जीवन से प्रभावित रामप्रसाद बिस्मिल का अपना सारा जीवन भी एक प्रकार की योग साधना ही था। उसने क्रांतिकारियों के संगठन में रत रहते हुए भी योगी अरविन्द घोष की पुस्तक ''योगसाधना'' का अनुवाद कार्य भी सम्पन्न किया।

क्रांतिकारी जीवन की स्वाभाविक परिणति है आर्थिक विपन्नता। स्थिति विषम हो रही थी और भारी प्रयासों और प्रयत्नों के उपरान्त भी रूखी सूखी जुआ पाने में असमर्थ कई क्रांतिकारी नेताओं में धनिकों का धन छीनकर स्वदेश की सेवार्थ लगाने का भी आह्वान किया। परन्तु आर्य समाज के निष्ठावान सदस्य बिस्मिल व्यक्ति को न लूटकर अन्यायी विदेशी सरकार को लूटने के पक्षधर थे। अतएव उन्होंने योजना बनाई कि सहारनपुर-लखनऊ पैसंजर ट्रेन से जाने वाले सरकारी खजाने को काकोरी नामक स्टेशन पर लूट लिया जाए। क्रांतिकारियों ने 9.8.1925 को यह ट्रेन लूट ली और प्राप्त हुआ धन स्वदेश के स्वाधीनता संग्राम हेतु योजनापूर्वक व्यय होने लगा। परन्तु यह ट्रेन डकैती सम्पूर्ण क्रांतिकारी संगठन के लिए घातक सिद्ध हो गया।

इस काण्ड में सम्मिलित होने वाले वीराग्रणी रामप्रसाद बिस्मिल बंदी बना लिया गया तो उस कट्टर आर्यसमाजी द्वारा क्रांति धर्म में दीक्षित किए गए मुसलमान युवक अशफाक उल्लाखां, श्री राजेन्द्र लाहिड़ी, शचीन्द बख्शी, केशव चक्रवर्ती, मुकुन्दीलाल, मन्मथनाथ गुप्त, मुरारीलाल, रोशनसिंह और श्री बनवारी लाल भी पकड़ लिए गए। हाँ एकमात्र चन्द्रशेखर आज़ाद ही था कि जो बंदी न बनाए जा सका। बंदी बनाए गए लोगों में से भी बनवारी लाल बाद में सुलतानी गवाह बन गया। 19.12.1927 ई. की शाम को उसको फांसी दी गई। 18 की शाम को जब उसको दूध दिया गया तो उसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि अब तो माँ का ही दूध पीऊँगा। 18 को उसकी मुलाक़ात माँ से हुई। माँ को मिलते समय उसकी आँखों से अश्रु बह चले। माँ बहुत हिम्मत वाली देवी थी। उससे कहन लगी—

हरिश्चन्द्र, दधीचि आदि बुजुर्गों की तरह वीरता, धर्म व देश के लिए जान दे, चिन्ता करने और पछताने की जरूरत नहीं ।

वह हँस पड़ा और कहा माँ ! मुझे क्या चिन्ता और क्या पछतावा । मैंने कोई पाप नहीं किया । मैं मौत से नहीं डरता । लेकिन माँ ! आग के पास रखा घी पिघल जाता है । तेरा मेरा सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है, कि पास होते ही आँखों में अश्रु उमड़ पड़े । नहीं तो मैं बहुत खुश हूँ । फाँसी पर ले जाते समय उसने बड़े जोर से कहा—वन्देमातरम्, भारत माता की जय और शान्ति से चलते हुए कहा—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू रहे
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे ।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही ज़िक्र यार तेरी जुस्तजू रहे ।

फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर उसने कहा—

मैं ब्रिटिश राज्य का पतन चाहता हूँ ।

फिर यह शेर पढ़ा—

अब न अगले बलबले हैं, और न अरमानों की भीड़ ।

एक मिट जाने की हसरत, अब दिले बिस्मिल में है ।।

बाद में ईश्वर के आगे प्रार्थना की और फिर मंत्र पढ़ना शुरू किया । गले में पड़ी रस्सी खींची गई । रामप्रसाद जी फाँसी पर लटक गया । वह वीर इस संसार में आज नहीं है । उसे अंग्रेज़ी सरकार ने अपना खौफनाक दुश्मन समझा । आम ख्याल यह है कि उसका कसूर यही था कि वह इस गुलाम देश में जन्म लेकर भी एक बड़ा भारी बोझ बन गया था और लड़ाई की विद्या से खूब परिचित था । उसको मैनपुरी षडयंत्र में नेता श्री गेंदामल दीक्षित जैसे शूरवीर ने विशेष तौर पर शिक्षा देकर तैयार किया था । मैनपुरी के मुक़द्दमे के समय वह भागकर नेपाल चला गया था । अब वही शिक्षा उसकी मृत्यु का कारण हो गई । 7 बजे उसकी लाश मिली और बड़ा भारी जुलूस निकला ।

स्वदेश-प्रेम में उसकी माता ने कहा–

मैं अपने पुत्र की इस मृत्यु पर प्रसन्न हूँ, दुःखी नहीं । मैं श्री रामचन्द्र जैसा ही पुत्र चाहती थी । बोलो श्री रामचन्द्र की जय ।

इत्र, फुलेल और फूलों की वर्षा के बीच उनकी लाश का जुलूस जा रहा था । दुकानदारों ने उनके ऊपर से पैसे फैंके । 11 बजे उसकी लाश शमशान भूमि में पहुँची और अन्तिम क्रिया समाप्त हुई ।

उसके पत्र का आखिरी हिस्सा उसकी सेवा में प्रस्तुत है–

मैं खूब सुखी हूँ । 19 तारीख को प्रातः जो होना है उसके लिए तैयार हूँ । परमात्मा काफी शक्ति देंगे । मेरा विश्वास है कि मै । लोगों की सेवा के लिए फिर जल्द ही जन्म लूँगा । सभी से मेरा नमस्कार कहे । दयाकर इतना काम और भी करना कि मेरी ओर से पण्डित जगतनारायण (सरकारी वकील, जिसने इन्हें फाँसी लगवाने के लिए बहुत जोर लगाया था) को अन्तिम नमस्कार कह देना । उन्हें हमारे खून से लथपथ रुपयों से चैन की नींद आये । बुढ़ापे में ईश्वर उन्हें सद्‌बुद्धि दे ।

रामप्रसाद जी की सारी हसरतें दिल ही दिल में रह गई । फांसी से दो दिन पहले से सी.आई.डी. के मि. हैमिल्टन उन लोगों की मिन्नत करते रहे–

और कहा कि तुम मौखिक रूप से सब बातें बता दो, तुझे पाँच हज़ार रुपये नक़द दे दिया जायेगा और सरकारी खर्चे पर विलायत भेजकर बैरिस्टर की पढ़ाई करवाई जायेगी ।

लेकिन वह कब इन बातों की परवाह करते थे । वह हकूमतों को ठुकराने वाला व कभी कभार जन्म लेने वाले वीरों में से था । मुक़द्दमे के दिनों में उससे जज ने पूछा था–

तुम्हारे पास क्या डिग्री है ?

तो उसने हँस कर जवाब दिया था–

सम्राट् बनने वालों को डिग्री की कोई जरूरत नहीं होती । क्लाइव के पास भी कोई डिग्री नहीं थी । आज हमारे बीच नहीं है । आह ।

अंत में रामप्रसाद बिस्मिल रचित एक गीता देखिये–

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए क़ातिल में है ।
रहबरे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में
लज़्ज़ते सहरानवदी[1] दूरिए मंजिल में है ।
वक़्त आने पर बहा देंगे तुझे ए आसमाँ
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है ।
अब न अगले बलबले[2] हैं अब न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत अब दिले बिस्मिल[3] में है ।
आज मक्तल[4] में यह क़ातिल कह रहा बार बार ।
क्या तमन्नायें-शहादत[5] भी किसी के दिल में है
ऐ शहीदे मुल्को-मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार[6]
अब तेरी हिम्मत की चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है

---

1. जगह जगह मारे फिरना, 2. जोश-हिम्मत, 3. जख्मी, 4. फाँसीगृह, 5. देश और समाज, 6. न्योछावर ।

19. अशफाक उल्ला खां

यह मस्ताना शायर भी हैरान करने वाली खुशी से 19.12.1917 को फांसी पर चढ़ा। बड़ा सुन्दर और लम्बा चौड़ा जवान था, तगड़ा बहुत था। जेल में कुछ कमजोर हो गया था। उसने मुलाक़ात के समय बताया कि कमजोर होने का कारण ग़म नहीं, बल्कि ख़ुदा की याद में मस्त रहने की खातिर रोटी बहुत कम खाना है। फाँसी से एक दिन पहले उससे मुलाक़ात हुई। वह खूब सजा-संवरा था। बड़े-बड़े कढ़े हुए केश खूब सजते थे। बड़ी हँस-हँस कर बातें करता रहा। उसने कहा कल मेरी शादी होने वाली है। दूसरे दिन सुबह छह बजे उसको फाँसी दी गई। क़ुरान शरीफ का बस्ता लटकाकार हाजियों की तरह वजीफा पढ़ते, बड़े हौंसले से चल पड़ा। आगे जाकर तख्ते पर रस्सी को चूम लिया। वहीं उसने कहा–

उसने कहा था कि मैंने कभी किसी आदमी के खून से अपने हाथ नहीं रंगे और मेरा इन्साफ ख़ुदा के सामने होगा। मेरे ऊपर लगाये गये इल्जाम ग़लत हैं। ख़ुदा का नाम लेते ही रस्सी खींच गई और वे कूच कर गया। उनके रिश्तेदारों ने बड़ी मिन्नतों-खुशामदों से उनकी लाश ली और उन्हें शाहजहांपुर ले आये। लखनऊ स्टेशन पर मालगाड़ी के एक डिब्बे में उनकी लाश देखने का अवसर कुछ लोगों को मिला। फाँसी के दस घंटे बाद भी चेहरे पर वैसी ही रौनक थी। ऐसा लगता था कि अभी ही सोये हों। लेकिन अशफाक तो ऐसी नींद में सो गया था कि जहाँ से वह कभी नहीं जागेगा। अशफाक शायर था आर उसका शायर हसरत था। मरने से पहले उसने ये दो शेर कहे थे–

फनाह है हम सब के लिए हम पै कुछ नहीं मौकूफ।
वका है एक फ़कत जाने की ब्रिया के लिए।।

(नष्ट तो सभी होंगे, कोई हम अकेले थोड़े होंगे। न मरने वाला तो सिर्फ एक परमात्मा है) और

तंग आकर हम उनके जुल्म से बेदाद से।
चल दिये सूए अदम जिन्दने फ़ैजाबाद से।।

श्री अशफाक की ओर से एक माफीनामा छपा था,उसके सम्बन्ध में श्री रामप्रसाद जी ने अपने आखिरी एलान में पोजीशन साफ कर दी थी। उसने कहा कि अशफाक माफीनामा तो क्या, अपील के लिए भी राजी नहीं था। उसने कहा था कि मैं ख़ुदा के सिवाय किसी के आगे झुकना नहीं चाहता। परन्तु रामप्रसाद के कहने-सुनने से उसने वही सब कुछ लिखा था। वरना मौत का उन्हें कोई डर या भय नहीं था। उपर्युक्त हाल पढ़कर पाठक भी यह बात समझ सकते हैं। वह शाहजहांपुर का रहने वाले था और रामप्रसाद का दांया हाथ था। मुसलमान होने के बावजूद उसे कट्टर आर्यसमाजी धर्म से बेहद दर्जे का प्रेम था। दोनों प्रेमी एक बड़े काम के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर, अमर हो गये।

(क्राँतिकारी पं. बिस्मिल द्वारा लिखित)

मैंने इस (काकोरी कांड) अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी ज़िन्दगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उनमें से ज़्यादा हिस्सा श्रीयुत अशफाक उल्ला खां वारसी का है। मैं अपनी कलम से उनके लिए भी अन्तिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मुझे भली-भाँति याद है, जब कि मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहांपुर आया था तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षडयंत्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। उसके मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुम ने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं।, तुम्हारे दिल में मुल्क़ की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशें ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे

भाई के समान हो गये थे। किन्तु मित्र की श्रेणी में तुम अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ, तुम सच्चे मित्र बन गये। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा विश्वास था, किन्तु तुम इन बातों को किंचित् भी मना नहीं करता था। मेरे कुछ साथी उसके मुसलमान होने के कारण कुछ घृणा की दृष्टि से देखते थे परन्तु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में आते जाते थे। हिन्दू मुस्लिम झगड़ा होने पर तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई खुल्लमखुल्ला गालियाँ देते थे, काफिरों के नाम से पुकारते थे, पर तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था तो यही कि मुसलमानों को ख़ुदा अक़्ल देता कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर के हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में लेख या पुस्तक लिखता तो सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते जो मुसलमान भी पढ़ सके? तुमने स्वदेश भक्ति के भावों को भली-भाँति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माता जी तथा भ्राता जी से बातचीत करते थे तो तुम्हारे मुँह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे जिससे सब को आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति देख कर बहुतों को सन्देह होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्याग कर शुद्धि न करा ली, पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था। फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते। तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्रमण्डली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने व तुमने एक थाली में भोजन किया। मेरे हृदय में यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकारते थे। तुम सदैव राम कहा करता था। एक समय जब तुम्हें हृदय कम्पन्न का दौरा हुआ तुम अचेत थे। उसके मुँह से बार-बार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहा था। पास खड़े भाई बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम-राम' कहता है। वे कहते रहे कि अल्लाह-अल्लाह कहो, पर तुम्हारी राम-राम की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ जो राम के भेद

को जानते थे। तुरन्त मुझे बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब लोग 'राम ! राम !' के भेद को समझे।

अन्त में इस प्रेम प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी एक कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो उसका दिन-रात प्रयत्न यही था कि जिस प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आन्दोलन में योग दें। तुम्हारे बन्धु तथा मित्र थे, सब पर उस ने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया, बहुधा क्रांतिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किया वे सराहनीय हैं। तुम ने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे तो यही शान्ति है कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाक उल्ला ने क्रांतिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा संबंधियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ़्तार हो जाने पर भी तुम अपने विचारों में दृढ़ रहें। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सब के परिणामस्वरूप अदालत में तुम को मेरा सहकार (लेफ्टीनैंट) ठहराया गया और जज ने मुक़द्दमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई ! तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन सम्पत्ति को देश सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया। जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देश की सेवा को भेंट कर दिया जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ सेवा में अर्पण करके अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।

असगर हरीम इश्क में हस्ती है जुर्म है।

रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिये हुए।।

श्री अशफाक उल्ला खाँ तो अंग्रेज़ी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर

राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करनी चाहिए। परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही तुमने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसलिए इसका दोषी मैं हूँ जो मैंने एक पत्र में अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुँचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जाए। भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्मायें उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जाएं।

अश्फाक उल्लाखाँ के कुछ शेर देखिए–

1. **आनी थी हम को मौत सो आई वतन से दूर।**
   अब देखना है कि ये मिट्टी कहां की है।।
2. **बहुत ही जल्द टूटेंगी गुलामी की ये जंजीरे।**
   किसी दिन देखना आज़ाद ये हिन्दोस्ताँ होगा।
3. **ज़िन्दगी बादे फना तुझ को मिलेगी हसरत।**
   तेरा जीना तिरे मरने की बदौलत होगा।।
4. **वतन हमेशा रहे शादकाम और आज़ाद।**
   हमारा क्या है अगर हम रहें न रहें।।
5. **बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा।**
   गो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।।
6. **वीर को मौत से हमने नहीं डरते देखा।**
   तख्तये मौत पे भी खेल ही करते देखा।।
7. **मौत इक रोज आनी है तो डरना क्या है।**
   हम सदा खेल ही समझा किए मरना क्या है।।
8. **तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से।**
   चल दिए सूए-अदम जिंदाने फैजाबाद से।।

9. जबकि गैरों से उन्हें इक दम की भी फ़ुरसत नहीं ।
फिर वह क्यों मिलने लगे अब हसरते नाशाद से ।।
10. बाइसे नाज जो थे अब हम फसाने न रहे ।
जिन तरानों में मज़ा था वह तराने न रहे ।।
11. घर छूटा बार छूटा अहले वतन छूट गए ।
माँ छूटी बाप छूटा भाई बहन छूट गए ।।
12. अपना यह अहद सदा से था कि मर जाएँगें ।
नाम माता तेरे उश्शाक (इश्क) में कर जाएंगे ।।
13. कौन वाकिफ था कि यूँ सर पे बला आएगी ।
बैठे बिठाये हुकूमत यह गज़ब ढायेगी ।।
14. फना (मृत्यु) है सब के लिए हम प कुछ नहीं मौकूफ (निर्भर) ।
बका (शेष) है एक फ़कत जाते केब्रिया (ईश्वर) के लिए ।।
15. तन्हाई गुरबत (एकांत की ग़रीबी) से मायूस न हो हसरत ।
कब तक न खबर लेंगे याराने-वतन (देशवासी) तेरी ।।
16. वह जुर्मे आरजू (आकांक्षा) पै जिस कदर चाहे सदा दे लें ।
मुझे खुद ख़्वाहिशें ताजिर मुलजिम (जुर्म से इन्कार) हूँ इकरारी ।।

20. सरदार भक्त सिंह

सन् 1907 में लायलपुर में ख्याति प्राप्त राष्ट्रभक्त आर्य परिवार में एक बालक ने जन्म लिया। इसी दिन कार्यवश नेपाल गए पिता घर वापस लौटे थे तो चाचा स्वर्णसिंह भी कारागार की यातनाएं झेलकर वापस आए थे और साथ ही दूसरे चाचा अजीतसिंह के मांडले कारागार से मुक्त होने का समाचार भी प्राप्त हुआ था। परिवार के लिए एक ही अनेक आल्हाददायक समाचार। ऐसे दिन को जन्मे बालक की दादी ने प्यार से नाम दिया भागों वाला या भगता। यही थे भगतसिंह। पिता ख्यातिप्राप्त व्यक्ति थे किशन सिंह। एक बार उनके घर डी.ए.वी. कॉलेज के अध्यापक जयचन्द विद्यालंकार आये। नन्हें भगत को उन्होंने स्नेह से अपने पास बुलाया। नामादि पूछने के बाद बड़े होकर क्या करोगे? बालक का उत्तर था खेती और वह भी बन्दूकों और तलवारों की।

उत्तर सुनकर जयचन्द जी दंग रह गए। जाते समय सरदार किशनसिंह से बोले, यह बालक एक दिन आपका नाम रोशन करेगा। दिन बीतते गये। जब भगतसिंह कुछ बड़े हुए तो पिता ने बांगा के प्राईमरी स्कूल में भर्ती कर दिया। वहाँ प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने पर भगत सिंह को लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में प्रवेश दिलाया गया और वहीं से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

उनका परिवार कट्टर आर्यसमाजी था। अतः अनुरूप आर्यसमाज के सिद्धान्तनुकूल वह जीवन में कुछ ठोस काम कर गुजरना चाहते थे। कॉलेज में भगत सिंह का परिचय सुखदेव, भगवतीचरण, यशपाल आदि से हुआ। इनमें सुखदेव सबसे अधिक उग्र विचारधारा के थे। भगतसिंह से उसकी घनिष्ठता हो गई। जिस कॉलेंज के प्राध्यापक भाई परमानन्द जैसे महान् क्रांतिकारी हों उनके सम्पर्क में कौन स्वाभिमानी युवक भला क्रांति की दीक्षा लेने से बच सकता था। उन्हीं दिनों सारे भारत में असहयोग आन्दोलन छिड़ गया तो भगतसिंह लाला लाजपतराय के ही नेशनल कॉलेज में भर्ती हो गए। भगतसिंह ने एफ.ए. परीक्षा पास की तो परिवार वालों ने उनके विवाह की तैयारी शुरू कर दी। भगत सिंह विवाह नहीं कराना चाहते थे। अतः घर से

भाग निकले। भागकर भगतसिंह दिल्ली आये और दैनिक 'अर्जुन' में पत्रकार के रूप में कार्य करने लगे। कुछ दिन तक यहाँ रहने के बाद पुनः कानपुर चले गए। वहाँ श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' में संपादकीय विभाग में काम किया। भगतसिंह ने उस सममय गुप्तनाम बलवंत रख लिया था।

उन्हीं दिनों उत्तरप्रदेश में एक क्रांतिकारी संगठन सक्रिय था, जिसकी शाखाएं कई मुख्य नगरों में थीं। कानपुर में भी विद्यार्थी जी के सहयोग से योगेशचन्द चटर्जी ने इनकी शाखा स्थापित की थी। भगतसिंह को राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित होकर विद्यार्थी जी ने उन्हें योगेशचटर्जी से मिला दिया। भगतसिंह भी क्रांतिकारी पार्टी के सदस्य बन गए। परन्तु यहाँ एक-दो बार चुपचाप क्रांतिकारी पर्चों के वितरण के अतिरिक्त भगतसिंह कुछ न कर सके। क्योंकि उसी समय उनके घर से पिता की भीषण अस्वस्थता का तार मिला और वे लाहौर चले गए। लाहौर से वह कुछ दिनों बाद अमृतसर पहुँचे जहाँ 'अकाली' नामक पत्र का सम्पादन आपने जसवंतसिंह नाम से किया। बाद में 'कीर्ति' नामक एक और पत्र का सम्पादन भी किया। उन्हीं दिनों बंगाल के एक अत्याचारी जिलाधीश चार्ल्स रेगर्ट के धोखे में एक 16 वर्षीय बंगाली तरुण गोपीमोहन साहा ने एक और अंग्रेज़ अफसर मि.डे. को गोली मार दी। साहा को इस हत्या के अपराध में मृत्युदण्ड दे दिया गया।

युवक गोपीमोहन को दिए गए मृत्युदंड के विरोध में सरदार भगत सिंह ने एक जनसभा का आयोजन कर उसमें अंग्रेज़ी राज्य सत्ता के विरुद्ध एक उत्तेजक भाषण किया। परिणामतः तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ वे पुलिस की निगाहों में शूल से खटकने लगे। भगतसिह भयभीत नहीं हुए अपितु उन्होंने क्रांति हेतु नवयुवकों को संगठित किया और नौजवान भारत सभा नामक एक संस्था की स्थापना कर दी। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि लाहौर में सुखदेव भी युवकों का एक विपुल क्रांतिकारी संगठन बना रहे हैं। बस, भगतसिंह लाहौर जाकर सुखदेव से मिले और तुरन्त उस संगठन के सदस्य बन गए।उन्हीं दिनों सन् 1926 में उनकी चन्द्रशेखर आज़ाद से भी भेंट हुई। एक गुप्त बैठक में यह निश्चय किया गया कि तुरन्त क्रांति की चेष्टायें आरम्भ कर देनी चाहिये। जयगोपाल नाम युवक ने स्कूल पुस्तकालय से विस्फोटक

पदार्थ बनाने की विधि नामक पुस्तक तथा प्रयोगशाला से पारा, दो थर्मामीटर और बैटरियां चुराईं तथा सुखदेव को दे दी और फिर हुआ ऐक्शन ।

अक्तूबर 1926 दशहरा मैदान में लोगों के बीच एक बम फटा । इस आरोप में नौजवान भारत सभा के कई सदस्य बंदी बनाए गए, जिनमें भगतसिंह भी थे । मुक़द्दमा चला । निर्दोष प्रमाणित होने पर भगतसिंह छोड़ दिये गये । गोरखपुर जिले के बुरहलगंज नामक स्थान पर डाकघर में एक कर्मचारी थे कैलाशपति । वे भी इसी संगठन के सदस्य थे । उन्होंने डाकघर से 3190 रुपये उड़ाया । 26.6.1928 को उसे दल के कार्य के लिए सुखदेव को देकर वे फरार हो गए । इसी बीच तय किया गया कि दल का केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया जाये तथा मुख्य नगरों में शाखायें भी खेली जायें । 8-9 सितम्बर 1928 को संगठन के गुप्त समिति की बैठक दिल्ली में हुई जिसमें दल की कार्यकारिणी समिति का चुनाव हुआ । भगतसिंह को दल की एक शाखा और प्रत्येक क्रांतिकारी से सम्पर्क बनाये रखने का कार्यभार सौंपा गया । उत्तरप्रदेश के कई नगरों में शाखायें स्थापित करने का निर्णय भी लिया गया । दल का नया नाम रखा गया–हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' अब क्रांतिकारी गतिविधियां तीव्र हो उठीं । आज़ाद के सुझाव पर बंगाल से कुछ उत्साही युवकों को लाकर कलकत्ता, आगरा, सहारनपुर व लाहौर में बम बनने के कारखाने स्थापित किये गये ।

20.10.1928 को साइमन कमीशन लाहौर आया तो उसके विरुद्ध लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक जुलूस निकाला । पुलिस ने जुलूस पर लाठी चार्ज किया । पुलिस सुपरिटैंडेंट मिस्टर स्कॉट ने लाला जी को बुरी तरह पीटा कि उन्हीं चोटों से अंततः 17 नवम्बर को पंजाब के इस महान् जननेता का निधन हो गया । अंग्रेज़ों के अत्याचार से अपने क्रांतिकारी की इस तरह करुण मृत्यु भगतसिंह कैसे बरदाश्त करें? उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि किसी भी कीमत पर वे स्कॉट को जरूर मौत के घाट उतारेंगे । योजना बन गई । 17.12.1928 को जयगोपाल को गलत शनाख्त करवान पर राजगुरु और भगतसिंह ने पुलिस सुपरिटैंडेंट के कार्यालय के समक्ष असिस्टैंट कमिश्नर मि. सैडर्स पर धड़ाधड़ गोलियाँ चलाकर उसका वध कर दिया । पीछा करने वालों में से चाननसिंह को आज़ाद की गोली चाट गई ।

इस गोली कांड से नगगर के चारों ओर पुलिस का पहरा बैठा दिया गया ताकि अभियुक्त निकल कर न भाग सकें। किन्तु मूंछ-दाड़ी कटवा और यूरोपीय सा छद्मवेश धारण कर भगतसिंह लाहोर से निकल गये। राजगुरु ने भगतसिंह के अर्दली का और आज़ाद ने तीर्थ यात्रा की टोली के पंडे का वेश धारण किया और पुलिस की आँखों में धूल झोंक कर निकल गए। इसके बाद संगठन की कार्यकारिणी समिति की बैठक में भगतसिंह ने रूस जाकर भारत को वहाँ से आवश्यक शस्त्र भेजने का प्रस्ताव रखा। परन्तु इसी बात पर सुखदेव से मतभेद हो जाने से योजना क्रियान्वित न हो पाई। बाद में योजना बनी कि भगतसिंह और बटुकेशवर दत्त असेम्बली में बम फैंके और आजाद, जयदेव और सदाशिव उन्हें वहाँ से बचा लाएं।

8.4.1929 को भगतसिंह और दत्त ने असैम्बली में बम फैंके। वे भाग सकते थे, परन्तु भागे नहीं। वे कई को मौत के घाट उतार सकते थे परन्तु ऐसा भी उन्होंने नहीं किया। वे वहाँ खड़े 'इंकलाब जिन्दाबाद' और 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे लगाते रहे। उन्होंने पुलिस के समक्ष निर्भीकता सति आत्म-समर्पण कर दिया। उन्हीं दिनों पुलिस को लाहौर बम-कांड का कुछ सुराग मिला और इससे दल के और कई सदस्य गिरफ़्तार हुए। लाहौर और सहारनपुर के बम बनाने के कारखाने भी पुलिस की पकड़ में आ गए। पहले दिल्ली में असैम्बली बम कांड का मुक़द्दमा भगतसिंह और दत्त पर चला। फिर लाहौर बम कांड और सैंडर्स हत्याकांड के मुक़द्दमे के लिये उन्हें क्रमशः मियांवाली और लाहौर जेलों मे ले जाया गया।

मुक़द्दमे के दौरान क्रांतिकारी संगठन के सदस्यों ने भारतीय बंदियों से सद्व्यवहार की माँग को लेकर कई बार अनशन किया आर 62 दिन के अनशन के बाद यतीन्द्र दास तो शहीद भी हो गए। अंत में अक्तूबर 1930 को फैसला सुनाया गया और भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सज़ा दी गई तो अन्य अभियुक्तों को 3 साल से लेकर आजन्म कालेपानी तक की सजाएं। उनकी सारी अपीलें भी रद्द कर दी गई। भगतसिंह आदि की फांसी की सजा रद्द करने के लिए सारे देश में हड़ताल आंदोलन प्रदर्शन हुए, भारत के कई वरिष्ठ नेताओं ने सरकार से इसके लिए अपील भी की पर सरकार के कान में जूं तक नहीं रेंगी। 22.3.19931 को अर्धरात्रि लाहौर सैंट्रल जेल में जब सुखदेव और राजगुरु के साथ भगतसिंह को फांसी स्तम्भ

पर ले जाने के लिए पुकारा गया तो भगतसिंह लेनिन का जीवन चरित्र पढ़ने में तल्लीन थे ।

बधिक से हँसी करते हुए जवांमर्द बोल उठा, "अरे भाई ! थोड़ी देर तो ठहर जाओ । इस पुस्तक को तो समाप्त कर लूं । तुम तब तक फाँसी की रस्सियों को तनिक मजबूत कर लो । कहीं ऐसा न हो कि इस शुभ घड़ी में ये ढीली पड़ जाएं ।

विचित्र विभूति था यह आग्नेयव्रती । वह जब वध स्तम्भ की ओर बढ़ा तो ऐसे छलांगें लगा रहा था कि जिस भाँति हिमालय से निकली गंगा की लहरें महासागर की उत्ताल तरंगों में सम्मिलित होने के लिए तड़पती प्रतीत होती है । 31.3.1931 को भगत सिंह ने नश्वर काया त्याग दी । उनकी जीवन ज्योति बुझ गई और असंख्य हृदयों में जग गई स्वतन्त्रता की लगन और तड़पन ।

भगत सिंह ने अन्तिम समय तक साहस का परिचय दिया । उन्होंने अपने भाई को एक पत्र में ये अशआर लिखे थे–

1. **उसे फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े जफ़ा क्या है,**
   हमें यह शोक हें देखें सितम का इन्तहा क्या है ।
2. **घर से क्यों खफा रहे खर्च का क्यों गिला करें,**
   सारा जहाँ अदू यही आआ मुकाबला करें ।
3. **कोई दम का मेहमां हूँ ऐ अहले महफ़िल**
   चिराग़े सहर हूँ बुझा चाहता हूँ ।
4. **मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली ।**
   यह मुश्ते चाक है ख़ाक रहे या न रहे ।

21. शिवराम राजगुरु

श्री शिवराम का जन्म 1909 में हुआ था। वह बचपन में बड़ा दृढ़ था। 6 वर्ष की आयु में उसके पिता जी का देहान्त हो गया। उसके बड़े भाई दिनकर जी उन दिनों पूना में नौकरी करते थे। इसलिए पिताजी की मृत्यु के बाद वह सपरिवार पूना में ही रहने लगे। श्री शिवराम आरम्भिक शिक्षा के लिए मराठी पाठशाला में भेजे गये परन्तु उनका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था अपितु खेलने में अधिक रुचि थी। खेलने की प्रवृत्ति को देखकर बड़े भाई ने उसको धमका दिया कि खेलकूद छोड़कर पढ़ने में मन लगाओ। इससे भयभीत होकर उसने पाठ्य पुस्तकों से एक उपन्यास को लेकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस पर भाई जी और बिगड़े और कहा कि यदि तुम्हें पढ़ना न हो तो घर से निकल जाओ। वह घूमते-घूमते पूना, नासिक, झांसी, कानपुर, लखीमपुर होते काशी पहुँच गया। वहाँ संस्कृत पढ़ी।

सन् 1928 में फिर कानपुर चला गया। यहाँ आने के थोड़े ही दिन पीछे आपके विचारों में परिवर्तन हो गया और वह फिर घूमते-घूमते पंजाब चला गया। वहाँ पर सरदार भगतसिंह श्री सुखदेव, आज़ाद की पार्टी में सम्मिलित हो गया और वह पंजाब में अंग्रेज़ी साम्राज्य को समाप्त करने के लिए भगतहि का साथ देने लगा। इसी अवसर की दो तीन घटनाएं मैं आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ। जिनसे पता चलेगा कि श्री राजगुरु में अंग्रेज़ी साम्राज्य को समाप्त करने के लिए कितनी श्रद्धा थी।

जब भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के वध का बदला लेने का प्रस्ताव रखा और उससे निश्चित हुआ कि लाला जी के वध के जिम्मेवार लाहौर पुलिस के सुपरिण्टैंडेंट स्कॉट को गोली से मार दिया जाये। तब राजगुरु ने जिद पकड़ी कि मारूँगा मैं। भगतसिंह न कहा मगर पकड़े जाने पर केस चलने पर ऐसा बयान दिया जाये कि जिसको सुनकर जनता में जाग्रति हो। इस कारण राजगुरु अकेला अयोग्य समझा गया और अंत में निश्चय यह हुआ कि स्कॉट को मारने के लिए राजगुरु, भगतसिंह व आज़ाद जायें और जयगोपाल को मौका देखने और स्कॉट साहब को पहचानने तथा उनकी गतिविधि का

ध्यान रखने आदि के लिए नियुक्त किया गया । यही जयगोपाल दुर्भाग्य का कारण हुआ जो कि बाद में लाहौर केस में माफीखोर सरकारी साक्षी बना ।

चार दिन बाद यह टुकड़ी अपने काम पर जाती रही थी । परन्तु स्कॉट साहब निर्दिष्ट स्थान मालरोड पर पुलिस कार्यालय से निकला ही नहीं । निडर होकर राजगुरु ने आज़ाद से कहा अन्दर जाकर ही ठीक किये आता हूँ अर्थात् पुलिस दफ़्तर में काम करते हुए स्कॉट को गोली से मार आता हूँ । आज़ाद ने उनकी बात न मानी क्योंकि आज़ाद ने भी प्रोग्राम बनाकर ठीक काम किया हुआ था ।

इतने में ही पुलिस अफसर कार्यालय से निकला उनका मुंशी मोटर साइकिल लिए उसके साथ था । जयगोपाल ने संकेत किया देखो शायद वह आया । भगतसिंह ने संकेत किया अरे यह वह मालूम नहीं होता । राजगुरु ने समझा कि अभी मत मार, जरा इधर आने दो । अर्थात् वह भगतसिंह के रेंज में जाये तो भगतसिंह गोली चलाये । भला राजगुरु को यह कब स्वीकार हो सकता था । अफसर मोटरसाइकिल पर पैर रखने ही वाला था कि राजगुरु के रिवाल्वर से निकली हुई गोली उसके सिर के पार हो गई वह वहीं ढेर हो गया । फिर भगतसिंह ने आगे बढ़कर पिस्तौल की आठ गोलियों से पुलिस अफसर की लाश को रोड़ पर झुलसा दिया ।

निवास स्थान पर आने पर राजगुरु ने कहा भगतसिंह ने आठ कारतूस बेकार खराब किये । इसी गोली काण्ड के बाद ही फर्न्स नामक व्यक्ति राजगुरु को पकड़ने के लिए लपका । जिसे देखकर ने अपना रिवाल्वर सीधा किया और बटन दबायां परन्तु गोली किसी कारणवश न चली । राजगुरु ने रिवाल्वर कोट की जेब में डाला और आगे बढ़कर फर्न्स से भिड़ गया आर उसे मालरोड की कठोर भूमि पर ऐसा पछाड़ा कि वह वहाँ से उठ न सका । स्मरण रहे कि यह जो ऊपर पुलिस अफसर मारा गया था साण्डर्स था, जो कि लाला लाजपतराय के वध का उतना ही जिम्मेदार था जितना कि स्कॉट ।

वह पूना में पकड़े गये और भगतसिंह और सुखदेव के साथ उसको भी फाँसी की सज़ा मिली । अन्त में 23.3.1931 फाँसी का दिन निश्चित कर दिया गया । साधारणतः फाँसी प्रातःकाल दी जाती है परन्तु सूर्य की साक्षी में

यह कुकर्म करने का साहस अंग्रेज़ सरकार में भी नहीं था। सरकार ने रात में ही खत्म करने का निश्चय किया। जेल के सभी द्वार बंद कर दिये गये। 7:32 पर तीनों क्रांतिकारी वीरों को कोठरी से निकाला गया। आँखों पर टोपी चढ़ाकर फांसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया। ठीक उसी समय 'डाउन डाउन विद् यूनियन चैक' के नारे लगाये गए। आवाज़ें एकाएक बंद हो गई और उसके बाद तीन लाशें स्ट्रेचर पर रखी हुई दीवार में एक छेद से बाहर कर दी गई। जेल से लाशें ले जाकर सतलुज के किनारे जहाँ पर लाला जी की मृत्यु हुई थी वहाँ लाशों पे मिट्टी का तेल डालकर जला दी गई। यह काम सरकार की ओर से बड़े गुप्त रूप से झटपट पूरा किया गया और भस्म सतलुज नदी में बहा दी गई।

22. सुखदेव

सुखदेव खास लायलपुर पंजाब के रहने वाले थे। उसका जन्म मिति फाल्गुन सुदी 6 संवत् 1964 को दिन के पौन ग्यारह बजे हुआ था। उसके पिता का देहान्त उसके जन्म से तीन मास पहले हो चुका था। इसलिए सेवा और शिक्षा का प्रबन्ध उसके चाचा अचिन्तराम ने किया था। उसका जन्म आर्यसमाजी घराने में होने के कारण उस पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव पड़ा। जहाँ भी आर्यसमाज का सत्संग होता था वहाँ पर वह अवश्य जाता था और उसको हवन संध्या योगाभ्यास का भी शौक़ था।

सन् 1919 में पंजाब के अनेक शहरों में मार्शल लॉ जारी था। उस समय उसकी आयु 12 वर्ष की थी और सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे। उसके चाचा इसी मार्शल ला में गिरफ़्तार कर लिये गये। बालक सुखदेव पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा। उसके चचा अचिन्तराम का कहना है कि जब मैं जेल में था, तब सुखदेव मुझ से मिलने आता था। तब पूछता था कि चाचा जी क्या इस जेल में आपको कष्ट दिया जाता है और कहता था कि मैं तो किसी को भी नमस्ते तक नहीं करूंगा।.....

महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन ने सुखदेव के जीवन को बदल डाला। उधर माता विवाह करना चाहती थी, परन्तु चाचा जी विरुद्ध थे। क्योंकि वे आर्य थे। अतः आर्य सिद्धान्त के अनुसार विवाह करना चाहते थे। उसकी माता जी जब-जब कहती थी कि सुखदेव मैं तुम्हारी शादी करूँगी तूं घोड़ी पर चढ़ेगा। तब सुखदेव सदा यही उत्तर देता था, घोड़ी पर चढ़ने के बदले फाँसी पर चढूंगा।..... नेशनल कॉलेज लाहौर में उसका परिचय भगतसिंह से हुआ था।

साइमन कमीशन के आने पर उन सबने निश्चय किया कि समारोहपूर्वक प्रदर्शन करना चाहिये। समारोह के लिए झंडियां बना रहे थे। उस समय केदारनाथ भी थे। परन्तु उन्हें नींद आ गई तो वे सो गये। उधर सुखदेव जी सरदार भगतसिंह के घर सो रहे थे। भगतसिंह ने भी कहा कि मैं भी सोता हूँ परन्तु मित्रों ने न सोने दिया। उसी समय भगतसिंह के अन्दर

विचार आया कि यदि पुलिस हमारे पर घेरा डालेगी तो सुखदेव पकड़ा जायेगा। इसलिए सुखदेव को सावधान करने के लिए एक मित्र को भेजा उसने थोड़े से समय में आकर कहा कि भगतसिंह के घर पुलिस पहुँच गई है।

पुलिस ने श्री सुखदेव को पकड़ लिया और बहुत प्रश्न किए परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। उसको बारह घंटे जेल में रखा गया। इसके पश्चात् कुछ लोगों ने जाकर उसको छुड़वा दिया। इसके पश्चात् कुछ लोगों में पार्टी का विचार हुआ तो भगतसिंह और सुखदेव ने यह प्रस्ताव रखा कि नवयुवकों को राजनीतिक शिक्षा देनी चाहिए। सरदार भगतसिंह ने प्रचार का कार्य आरम्भ किया। इसके पश्चात् यह कार्य श्री सुखदेव को सौंपा गया। वह इस प्रचार के कार्य को बहुत दिनों तक बड़ी सफलता के साथ करते रहे। उसका सिद्धान्त था कि वह केवल कार्य करना चाहता हूँ, प्रशंसा नहीं।

इसके पश्चात् 5 अप्रैल सन् 1919 को श्री किशोरीलाल और प्रेमनाथ के साथ उसकी भी गिरफ़्तारी हो गई। अन्त में 7.10.1930 को फाँसी का दण्ड सुनाया और 23.3.1931 को 24 वर्ष की आयु में उसको भगतसिंह और राजगुरु के साथ फाँसी पर लटका दिया गया और लाश को तेल छिड़क कर जला नदी में बहा दिया।

23. चन्द्रशेखर आज़ाद

चन्द्रशेखर आज़ाद का व्यक्तित्व काकोरी षडयंत्र के चार शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकउल्ला खां, रोशनसिंह तथा सरदार भगतसिंह से इतना बंध हुआ है कि इन पाँचों की जीवनियों में उनकी जीवनी स्वतः आ जाती है। चन्द्रशेखर आज़ाद को उन थोड़े से महान् क्रांतिकारियों में गिनाया जा सकता है, जो बहुत अच्छे संगठनकर्ता होने के साथ ही साथ त्याग की भावना से पूर्ण रूप से परिचालित होते थे। यह एक आश्चर्य की बात हे कि वह अपने त्याग और निष्ठा की बदौलत वे किस प्रकार भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा, भगवान्दास, वैशम्पायन आदि विद्वान् क्रांतिकारियों पर नेतृत्व करते थे, यद्यपि वे स्वयं बहुत ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे।

उनका जन्म मध्यप्रदेश के भावना नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित सीताराम था। सीताराम जी रोटी की तलाश में उन्नाव का बदरका नामक गाँव छोड़कर भावरा आए थे। घर में कोई सुख नहीं था क्योंकि पंडित सीता राम मामूली नौकर थे, इसलिए पहला मौका मिलते ही चन्द्रशेखर आज़ाद संस्कृत पढ़ने के लिए काशी रवाना हो गए। वहाँ के सम्बन्ध में उन्होंने सुन रखा था कि धर्मात्मा लोग संस्कृत पढ़ने वाले ब्राह्मणों को रहने की जगह और खाना देते हैं। चन्द्रशेखर आज़ाद को काशी में संस्कृत-छात्रों के साथ रहन का मौका मिला। उन्हीं दिनों गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन की पुकार दी और मज़े की बात यह थी कि काशी में संस्कृत छात्र अन्य मामलों में सबसे पिछड़े होने पर भी उस समय सब से आगे बढ़ आये और उन्होंने स्कूल कॉलेजों में पिकेटिंग में भाग लिया। इसी सिलसिले में चन्द्रशेखर आज़ाद गिरफ़्तार हो गए। दस्तूर अनुसार उन पर मुक़द्दमा चला।

यह वह जमाना था, जब अभियुक्त अदालत से सम्पूर्ण रूप से असहयोग करते थे। एक राजनीतिक अभियुक्त से पूछा गया—तुम्हारा नाम क्या है? चूंकि नवम्बर का महीना था, इसलिए उसने कह दिया मेरा नाम

नवम्बर है ।

पूछा गया—बाप का नाम दिसम्बर !

इन बातों को पढ़कर पाठक को हँसी आयेगी, परन्तु यह वह युग था, जब बहुत बड़े पैमाने पर राष्ट्र अपनी बेड़ियों को झनझनाकर तोड़ने के लिए उन्मुख हो रहा था । अदालत का अपमान अंग्रेज़ी साम्राज्य का अपमान, ब्रिटिश सिंह की पूंछ ऐंठ देना, अपन पैरों पर खड़ा होना, ये ही उस युग की विशेषताएं थी । बालक चन्द्रशेखर से पूछा गया—

तुम्हारा नाम क्या है ? —आज़ाद

तुम्हारे बाप का नाम ? —स्वाधीन

घर —जेलखाना

मजिस्ट्रेट खरेघाट ने इस पर पन्द्रह बेंत की सज़ा दी । शायद ये मजिस्ट्रेट जीवित रहे और स्वतन्त्र भारत में बहुत बड़े ओहदे से रिटायर हुए । कुछ भी हो, चन्द्रशेखर को जो अब आज़ाद भी हो चुके थे, पंद्रह बेंत लगे । हर बेंत पर उन्होंने महात्मा गांधी की जय का नारा लगाया क्योंकि उन दिनों राष्ट्र की युद्ध घोषणा का यही नारा था । बाद में चलकर इस बालक ने दो बातों में अपने इतिहास को झूठला दिया । एक तो उसने कहा था—मेरा घर जेलखाना है, परन्तु वह उस बिना किराये के घर में आगे कभी गया ही नहीं । वह आज़ाद बना रहा । दूसरी बात जो उसने झुठलाई वह यह थी कि बाद को चलकर वह क्रांतिकारियों का महान् नेता बना और इस प्रकार महात्मा गांधी के जीवन दर्शन का सब से बड़ा जीता जागता विरोध ओर प्रतिवाद बना । ऐसा क्यों हुआ, यह हम देखें तो बड़ी अजीब बातें सामने आएंगी । महात्मा गांधी ने 1922 में चौरा-चौरी काण्ड के कारण अच्छा भला, चला चलाया आन्दोलन रोक दिया था । इस प्रकार आन्दोलन को एकाएक रोक दिए जाने से बहुत से लोगों को यहाँ तक कि महात्मा के परमभक्त देशबन्धु चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू को भी बड़ा धक्का लगा ।

जब गांधी के भक्तों को ही धक्का लगा तो उन क्रांतिकारियों का क्या कहना जो असहयोग आन्दोलन के कारण उसका नतीजा देखने के लिए चुप

करके बैठ गये थे या असहयोग में कूद पड़े थे। रासबिहारी बोस के साथी शचीन्द्रनाथ सान्याल और गेंदालाल दीक्षित के दल के रामप्रसाद बिस्मिल फिर से मैदान में कूद पड़े। काशी में भी क्रांतिकारियों का काम होने लगा। बेंत खाकर छूटने के बाद चन्द्रशेखर आज़ाद का ज्ञानवापी में स्वागत हुआ था और मेज पर खड़ा करके उनका व्याख्यान हुआ था। सभास्थल खचाखच भरा था। चन्द्रशेखर आज़ाद ने कुछ शब्द कहे थे जिस पर बड़ी तालियाँ बजी थी।

चन्द्रशेखर आज़ाद को काशी विद्यापीठ में पढ़ाने की चेष्टा हुई। काशी के प्रसिद्ध देशभक्त नेता और 'आज' पत्र के मालिक, विद्यापीठ के अन्यतम संचालक और उसका खर्च उठाने वाले बाबू शिवप्रसाद गुप्त चन्द्रशेखर आज़ाद को पढ़ाने का खर्च देने को तैयार थे और वे उन्हें अपने यहाँ रखना भी चाहते थे, परन्तु उनका मन नहीं लगा और वे थोड़े ही दिनों में उनसे अलग हो गये। उन्हीं दिनों उन्हें क्रांतिकारी दल का दूत प्रणवेश चटर्जी मिला। इस प्रकार चन्द्रशेखर आज़ाद क्रांतिकारी दल के सदस्य हो गये। जल्दी ही उन्होंने एक संगठनकर्ता के रूप में साथ ही असीम साहसी के रूप में नाम कर लिया। रामप्रसाद बिस्मिल ने उनका नाम 'क्विक सिलवर' यानी 'पारा' रखा और तब से चन्द्रशेखर आज़ाद क्रांतिकारी दल के सबसे भयानक और कठिन कामों में भाग लेने लगे।

उन्होंने रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में बहुत सी राजनीतिक डकैतियों में तथा काकोरी ट्रेन डकैती से भाग लिया। ऐन काकोरी ट्रेन डकैती के बाद परिस्थित बहुत कठिन हो गई और काशी में लोग खुल्लमखुल्ला यह कहने लगे कि यह डकैती क्रांतिकारियों के द्वारा डाली गई है। यही नहीं, कुछ लोगों के नाम भी लिए जाने लगे। अंग्रेज़ी सरकार ने तब देर करना उचित नहीं समझा और 26 सितम्बर 1925 को उस समय संयुक्त प्रान्त और अब के उत्तरप्रदेश में पुलिस ने गिरफ्तारियां और तलाशियां शुरू कर दीं। सभी मुख्य अभियुक्त पकड़े गए परन्तु चन्द्रशेखर आज़ाद नहीं पकड़े जा सके। वे स्थिति को सूंघकर समय पर सटक गए थे। उनके नाम से वारंट निकला, परन्तु वे गिरफ़्तार नहीं किये जा सके। यहाँ तक कि पुलिस को कुछ भी पता नहीं लगा। वे झांसी में भगवान और मलकापुरकर आदि के साथ दल को चुपके-चुपके संगठित करते

रहे और जब काकोरी षडयंत्र का मुक़द्दमा खत्म हो गया, तब वे फिर से सरकार पर आक्रमण करने के लिए तैयार हुए। तब वे उत्तर भारत के क्रांतिकारियों में सब से पुराने और तजुर्बेकार क्रांतिकारी नेता था, परन्तु वे केवल इस नाते नहीं, वे सब से अधिक साहसी होने के नाते भी भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त, विजयकुमार सिन्हा, कमलनाथ तिवारी आदि के नेता रहे।

तब भारत में साइमन कमीशन आने वाला था, यह जांच करने के लिए कि भारत कहाँ तक स्वराज्य के उपयुक्त हुआ है, तो कांग्रेस ने ही नहीं, भारत के सभी दलों ने यह तय किया कि इस कमीशन का बायकाट करना चाहिये। क्रांतिकारी दल की एक टुकड़ी में मार्कण्डेय, मनमोहन गुप्त तथा हरेन्द्र भट्टाचार्य को भयानक बम देकर भेजा कि इस कमीशन को उड़ा दे, परन्तु जब ये तीनों व्यक्ति मनमाड़ के पास रेल से सफर करर रहे थे, तो बम फट गया। डिब्बे की छत उड़ गई। कई यात्री जिनमें मार्कण्डेय भी थे मारे गए। हरेन्द्र भट्टाचार्य गिरफ्तार होकर इकबाली बन गया। मनमोहन गुप्त को सात साल की सज़ा हुई।

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो उसका बायकाट करते हुए वृद्ध नेता लाजपतराय पर लाठियां पड़ी और वे चल बसे। इससे देश में बड़ा शोर मचा और क्रांतिकारियों ने चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह आदि चार व्यक्तियों को साण्डर्स नामक गोरे पुलिस अफसर को मारने के लिए भेज दिया, जो लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिए जिम्मेदार था। चन्द्रशेखर आज़ाद भी उनमें थे।

इसके बाद ही भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने असैम्बली में बम फैंका और साथ में एक वक्तव्य भी प्रचारित किया जिसमें दल का उद्देश्य मेहनतकश वर्ग का समाजवाद घोषित किया गया। इस कार्य के पीछे भी चन्द्रशेखर आज़ाद का हाथ था। उधर लाहौर षडयंत्र चला और भगतसिंह उसमें ले जाए गए और इस मुक़द्दमे में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सज़ा हुई।

चन्द्रशेखर आज़ाद फिर भी आज़ाद रहे, पुलिस उनके पीछे बहुत बुरी तरह पड़ी थी। वे उन्हीं दिनों जवाहरलाल नेहरू से भी मिले थे जिसका ब्यौरा

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है उसमें आज़ाद की भेंट का वर्णन करने के बाद जवाहरलाल ने यह लिखा है कि क्रांतिकारी फासिस्टवादी मनोवृत्ति के होते थे। फासिस्ट शब्द का अर्थ एक विशेष सन्दर्भ से सम्बन्ध रखता है। जहाँ पूंजीवाद पतनशील हो जाए और वह अपने नंगेपन को लोकतंत्र के अंजीरी पत्तों से ढक न पाए और खूनी पंजा प्रकट करके अपने असली अधिनायकवादी खूनी रूप में आ जाए। वहीं फासिस्टवाद का उदय हुआ ऐसा माना जाता है। अवश्य जिस युग में जवाहरलाल की आत्मकथा प्रकाशित हुई, उस युग में सारे यूरोप में फासिस्ट शब्द का प्रयोग उन सब लोगों के लिए होता था, जिनसे अपना मतभेद हो।

चन्द्रशेखर आज़ाद की विस्तृत जीवनी में यह दिखलाया गया है कि वे किन विचारों के थे। सच्चे अर्थों में वे जनता के आदमी थे। भयंकर ग़रीबी में पले थे। दल में भी उन्होंने कभी एक पैसा खर्च नहीं किया। बल्कि भगवानदास, विजयकुमार सिन्हा, वैशम्पायन आदि पर जो उने वीर साथी थे, वे सदा लाठी लिये सवार रहते थे कि कहीं दल का पैसा एक कौड़ी ज़्यादा न खर्च हो जाए। दिन भर के लिए फरारों को कुछ आने पैसे मिलते थे, यदि सिनेमा देखना है तो उसी में से बचाकर देखो, यही उनकी नीति थी। हर खतरे में वे सब से आगे रहते थे। कभी उन्होंने यह नहीं समझा कि वह नहीं रहेगा, तो दल नष्ट हो जायेगा। इसलिए उसका बचे रहना जरूरी था। विचारों में भी वे बहुत आगे बढ़ गये थे और अन्त में धर्म के विरोधी हो गये थे। उनका विचार यह हो गया था कि प्रचलित धर्म पूर्ण रूप से अयथेष्ट हैं और उनके कारण आदमी का मन खिलता नहीं है, बल्कि बंद हो जाता है। काशी में रहने के कारण उन्हें यह मालूम हो चुका था कि पण्डे पुजारी तथा साधु किस प्रकार ढोंग और ढकोसले के शिकार हैं।

पुलिस बुरी तरह आज़ाद के पीछे पड़ी हुई थी और आज़ाद बराबर पुलिस की आँखों में धूल डालकर भाग निकलते थे। पुलिस को गर्म बिस्तरा मिलता था, लेकिन आज़ाद नहीं मिलते थे। इस प्रकार चन्द्रशेखर आज़ाद घूमते-घूमते 27.2.1931 को अल्फ्रेड पार्क में बैठे हुए थे कि पुलिस ने दिन के दस बजे उन्हें घेर लिया। दोनों तरफ से गोलियाँ चलीं और अन्त में

चन्द्रशेखर आज़ाद शहीद हो गये। शहीद होने के बादइ का उनका फोटो पहले-पहल इंग्लैंड की एक पुस्तक में छपा, जिसको लेकर अब यह भारत में प्रचारित हो गया है। एक अफवाह यह भी है कि चन्द्रशेखर आज़ाद पुलिस की गोली से नहीं मरे बल्कि उन्होंने अपने को बिल्कुल घिरा हुआ पाया और भागने का कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ा तो उन्होंने एक गोली अपने ऊपर चला ली।

इस प्रकार एक महान् व्यक्तित्व का अन्त हुआ। चन्द्रशेखर आज़ाद की माता जी उसके बाद बहुत दिनों तक जीवित रहीं और काफी बुरी हालत में रही। भगवानदास माहौर, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने उनकी सहायता की। इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्रशेखर आज़ाद ने कर्म से या विचारों से कभी कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे उनके क्रांतिकारीत्व में किसी प्रकार का बट्टा लगे। इस कसौटी पर बहुत कम क्रांतिकारी ही सच्चे उतर सकते हैं।

24. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस

भारत के कोटि-कोटि हृदयों के प्रिय 'नेताजी' आज़ादी के कर्णधार मातृभूमि के लिए तन-मन-धन से समर्पित, वीर सेनानी, परम देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस आज़ादी के इतिहास के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता हैं। भारत की आज़ादी प्राप्त होने में चार मुख्य कारण रहे थे–

(1) सशस्त्र क्रांतिकारियों का आतंक

(2) महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन

(3) आज़ाद हिन्द फौज का भय

(4) भारत की जनता के हृदय में उभरी स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा।

इन सब कारणों से नेता जी द्वारा संगठित आज़ाद हिन्द फौज का अधिक महत्व इस कारण हे कि जिस सेना को भारतीयों के दमन का साधन बना रखा था, आज़ाद हिन्द फौज के वातावरण से उसी भारतीय सेना में जहाँ अंग्रेज़ों के विरुद्ध अविश्वास एवं असहयोग का भाव पनप गया वहीं सरकार के मन में भविष्य में ऐसी सेनाओं के निर्माण होने की राह पड़ने की आशंका घर कर गई। ऐसी स्थिति में अंग्रेज़ सरकार को आभास हो गया कि अब उसका अधिक दिनों तक टिकना सम्भव नहीं है।

पाठकों को याद रखना चाहिये कि कोई आक्रान्ता शासक हथियार हुए राज्य को कभी थाली में परोसकर नहीं लौटता जब तक कि वे उसे जान-माल का भय न हो और यह भय अंग्रेज़ सरकार को केवल दो संगठनों से था–क्रांतिकारी संगठनों और आज़ाद हिन्द फौज जैसी सेनाओं से था। इसलिए नेताजी का आज़ादी प्राप्ति में जो योगदान था, वह अमूल्य है।

इस जन-जन के दुलार देशभक्त का जन्म 23.1.1897 को कटक (वर्तमान उड़ीसा) में एक बंगाली परिवार में हुआ था। इनके पिताश्री का नाम जानकी दास था। जानकीदास का जीवन अभावों और बाधाओं से भरा था किन्तु अथक परिश्रम के बल पर उन्होंने इतनी उन्नति की कि सरकार ने इन्हें 'राय बहादुर' की उपाधि से अलंकृत किया। सुभाष के अतिरिक्त इनके

शरच्चन्द्र और सुनीलचन्द्र दो पुत्र और थे। माताश्री भी देशप्रेमी और बुद्धिमती थीं। पुत्रों को उच्च शिक्षित करने में इनकी भी विशेष प्रेरणा थी। कटक के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंस कॉलेज में प्रवेश ले लिया। यहीं सुभाष के साथ वह ऐतिहासिक घटना घटी जिसने सुभाष को एक वीर युवा के रूप में स्थापित किया और उसकी जीवन दिशा ही बदल दी। कॉलेज का एक अंग्रेज़ प्रोफैसर सी.एफ. ओटन बड़ा जातीय अभिमानी था और भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखता था। उस प्रोफेसर ने सुभाष की कक्षा के एक विद्यार्थी से कोई प्रश्न पूछा। वह उसका ठीक से उत्तर नहीं दे पाया। वस्तुतः उसने प्रश्न ठीक से नहीं सुना था, शीघ्रता में उत्तर दे गया। इतनी सी बात पर प्रोफेसर ने क्रोध तड़ककर कहा–

''यू रास्केल''

''सर, मैं आपके प्रश्न को ठीक से समझ नहीं सका।'' छात्र ने विनम्रता से उत्तर दिया।

''यू ब्लैक मंकी (काले बंदर) तू प्रश्न को भी ठीक से नहीं समझ सकता?'' प्रोफैसर ने विनम्रता का उत्तर जातीय गाली से दिया।

कक्षा में बैठे देशभक्त वीर सुभाष का यह गाली सहन नहीं हुई। उसने खड़े होकर आक्रोश भरे शब्दों में कहा–

''प्रोफैसर साहब, जरा संभलकर बोला कीजिए। कौम की गाली देना अनुचित है।

''यू ब्लडी'' अंग्रेज़ प्रोफेसर ने और अधिक अहंकार में आकर एक और गाली दे डाली।

सुभाष के हृदय को इन अपमानजनक गालियों ने छलनी कर दिया। सुभाष क्रोध में तमतमाया। प्रोफेसर की ओर यह कहते हुए आगे बढ़ा कि–

हमारी आज़ादी छीनकर हमें गुलाम बनाकर हमें गालियों से अपमानित भी करते हो?

''शट अप, यू बास्टर'' कहकर प्रोफेसर कक्षा से बाहर निकलने लगा। सुभाष ने उसे पकड़कर एक जोरदार तमाचा मुँह पर दे मारा। गोरे चेहरे पर

पाँचों अंगुलियों की कलाकृति अंकित हो गई। गाल को सहलाता हुआ प्रोफेसर सीधा प्रिंसिपल के पास पहुँचा और सुभाष की शिकायत लगाई। सुभाष और उनके मित्र अनंग मोहनदास को कॉलेज से निकाल दिया गया। यह तमाचा अंग्रेज़ प्रोफेसर के मुँह पर नहीं, अंग्रेज़ सरकार के मुँह पर लगा था। तभी से सुभाष विद्रोही बन गया क्योंकि वह एक और बड़ा तमाचा अंग्रेज़ सरकार के मुँह पर जड़ना चाहता था।

सर आशुतोष के प्रयासों से सुभाष को 'स्काटिश कॉलेज' में प्रवेश मिल गया। वहाँ से उन्होंने बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर वे पिता के आदेश से आई.ए.एस. (वर्तमान आई.ए.एस.) परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट हो गये। प्रतिभाशाली सुभाष ने 1920 में आई.सी. एस. परीक्षा में चौथ स्थान प्राप्त किया। माता-पिता, बन्धु-बांधव इस सफलता पर फूले नहीं समाये। किन्तु सुभाष का लक्ष्य आक्रान्ता अंग्रेज़ों की गुलामी करना नहीं था, वे तो उनसे भारत को आज़ाद कराना चाहते थे। उस समय आई.सी.एस. अधिकारी एक राजा के समान होते थे। सुभाष चाहते तो जीवनभर शाही ठाठ-बाट से जीवन बिता सकते थे किन्तु उन्होंने आई.सी. एस. से त्यागपत्र देकर सारे ठाठ-बाट को ठुकरा दिया। देश के लिए ठोकरें खाना अधिक कल्याणकारी समझा।

विद्रोही सुभाष का जीवनवृत्त अनेक रोमांचक घटनाओं से परिपूर्ण है। यहाँ उसे संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है। सुभाष ने अनेक बार जेलें काटीं। अंग्रेज़ सरकार उनके वीरतामय व्यक्तित्व से भयभीत थी। अतः उन पर अनेक अपमानपूर्ण प्रतिबन्ध लगाये गये, परन्तु सुभाष उनसे कभी नहीं घबराये अपितु आग में तपे सोने की तरह कुन्दन बनकर निखरते चले गये। 1921 में जब 'प्रिन्स ऑफ वेल्स'' (ब्रिटेन का युवराज) भारत में आया तो भारतभर में उसके बहिष्कार की तैयारियां होने लगीं। बंगाल में सुभाष बाबू सक्रिय थे। युवराज के आने से पूर्व दिसम्बर 1921 में सुभाष को गिरफ़्तार कर छह मास के लिए जेल में डाल दिया। वहाँ जेल में उसे देशभक्त नेता देशबन्धु चितरंजनदास मिले। सुभाष श्रद्धावश उनका भोजन बनाते थे। उनके सान्निध्य में रहकर सुभाष में देशभक्ति की भावना और सुदृढ़ हो गई।

जेल से छूटने पर सुभाष ने बंगाल में आई बाढ़ के अवसर पर उल्लेखनीय बचाव कार्य किया। उन्होंने 'युवक दल' की स्थापना की। अब वे युवकों के एकछत्र नेता माने जाने लगे थे। 1933 में कलकत्ता कार्पोरेशन के चुनाव हुए तो उनमें सुभाष बाबू को निर्विरोध चुना गया। इन्हें कॉर्पोरेशन का 'एक्जिक्यूटिव ऑफिसर' बनाया गया। सुभाष का त्याग देखिए, उस समय इस पदाधिकारी को वेतन के रूप में 3000 रुपये मासिक मिलते थे। किन्तु इन्होंने वेतन के रूप में खर्च चलाने के लिए केवल 1500 रुपये मासिक ही लिये। सुभाष की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी तो अंग्रेज़ सरकार की दिल की धड़कन बढ़ रही थी।

'बंगाल आर्डिनेंस' की आड़ में अंग्रेज़ सरकार ने 25.10.1924 को 80 युवकों को गिरफ्तार कर जेल में ठूंस दिया। उनके साथ बिना कारण सुभाष को भी गिरफ्तार कर बर्मा की माण्डले जेल में भेज दिया। देशबन्धु चितरंजनदास ने इस गिरफ्तारी का विरोध किया किन्तु शातिर अंग्रेज़ी सरकार ने उस पर ध्यान नहीं दिया। माण्डले जेल में सुभाष के स्वास्थ्य पर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ा कि कछ ही समय में उनका 40 पाउंड वजन घट गया। सारे देश में इस बात को लेकर शोर मचा, तब अंग्रेज़ सरकार ने इस शर्त के साथ सुभाष को छोड़ना स्वीकार किया कि सुभाष भारत नहीं लौटेंगे, सीधे यूरोप चले जायें। किन्तु सुभाष ने इस अपमानपूर्ण प्रतिबन्ध को ठुकरा दिया। सरकार को विवश होकर 1926 में उनको छोड़ना पड़ा।

जेल से छूटकर वह कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य करने लगे। अनेक बार सम्मेलनों के प्रमुख अधिकारी व संयोजक बने। 1928 में कलकत्ता में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन आपके प्रबन्धकाल में अत्यन्त सफल हुआ। यह अधिवेशन उसके प्रबन्धकाल में अत्यन्त सफल हुआ। इस अधिवेशन के कुछ समय बाद क्रांतिकारी यतीन्द्रनाथ का देहान्त हो गया। शवयात्रा में लोगों की भारी भीड़ जमा थी। इस अवसर पर सुभाष ने ओजस्वी भाषण दिया। सरकार ने उसे अपराध मानते हुए उसको छह मास के लिए जेल की सज़ा दी। जेल को पूरी कर छूटे ही थे कि 26.1.1931 को एक स्वातन्त्र्य जुलूस निकाला जिसमें सुभाष बाबू भी घोड़े पर सवार थे। पुलिस ने उस जुलूस पर

लाठी चार्ज किया और लोगों को पकड़कर जेल में भेज दिया। सुभाष को फिर छह महीने की जेल हुई। परन्तु गांधी-इर्विन समझौते के अन्तर्गत पहले ही छोड़ दिये गये।

जेल से छूटने के बाद मथुरा में एक ''नौजवान भारत सभा'' का अधिवेशन आयोजित हुआ। उसको सभापति चुना गया। उस अवसर पर उसके भाषण की आड़ लेकर उसको बिना मुक़द्दमा चलाये जेल में डाल दिया। लगातार जेलों में रहने से उसका स्वास्थ्य चिन्ताजनक ढंग से गिर गया। देश में सुभाष को छोड़ने के लिए आवाज़ उठी तो कुटिल अंग्रेज़ सरकार ने फिर वही शर्त रखी कि सुभाष भारत में न रहें तो उसे छोड़ दिया जायेगा। सुभाषा ने इस शर्त को नहीं माना किन्तु गिरते स्वास्थ्य को देखते हुए और देश के नेताओं के आग्रह पर उन्होंने उस शर्त को स्वीकार कर लिया। उन्हें वायुयान में बिठाकर स्विटजरलैंड भेज दिया गया। कई वर्ष विदेश प्रवास के बाद पिता जानकीदास जब मृत्यु शय्या पर थे तो उन्होंने सुभाष स मिलने की इच्छा व्यकत की। अंग्रेज़ सरकार पहले तो मानी नहीं, फिर वही शर्त रखी कि मिलकर वापस यूरोप लौटना पड़ेगा। सुभाष इस शर्त पर आये तो तब तक पिता का देहान्त हो चुका था। सुभाष को अंग्रेज़ सरकार के इस बर्बर व्यवहार से इतना आघात लगा कि वे 1936 में बिना अनुमति के स्वदेश लौट आये। आते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 1937 में उन्हें फिर छोड़ दिया।

वे कांग्रेस में फिर सक्रिय हो गये। त्रिपुरा कांग्रेस का उन्हें पुनः सभापति चुना गया। कांग्रेस में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया परन्तु महात्मा गांधी और गांधी दल का सुभाष के प्रति संतोषजनक रवैय्या नहीं था। अतः मतभेद उभरते गये। फिर सन् 1940 के जुलाई मास में कलकत्ता के 'हालवेल स्मारक' के विरुद्ध आन्दोलन में भाग लेने के कारण सुभाष को फिर जेल में डाल दिया। कुछ दिनों बाद उन्हें जेल से निकालकर उन्हीं के एल्गिन रोड़ पर कलकत्ता स्थित मकान में नजरबंद करके रखा गया। अंग्रेज़ सरकार का बस यही लक्ष्य था कि यह शेर किसी प्रकार पिंजरे में ही बंद रहे। सुभाष के हृदय में आज़ादी की भावनाएं कसमसा रही थीं। वह समझ रह था

कि सरकार जेलों में सारे जीवन को नष्ट करना चाहती है । परन्तु सुभाष कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता था जो प्रभावकारी हो, सफल हो, देश की गुलामी से मुक्त करने वाला हो, अंग्रेज़ की जड़ें उखाड़ने वाला हो । उसने निश्चय कर लिया कि वह जीवन का अमूल्य समय यों ही बर्बाद नहीं होने देगा..... निश्चित रूप से नहीं होने देगा ।

26.1.1941 का दिन था । इतिहास एक नयी करवट बदलने चला था । सुभाष एक दाढ़ीधार पठान का वेश बनाकर, नजरबंदी के लिए तैनात पुलिस दल की आँखों में धूल झोंककर घर से निकल गये और अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पहुँच गये । वहाँ से जर्मन दूतावास की सहायता से जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुँचे । जर्मनी में सुभाष भारत की आज़ादी में सहायता के लिए हिटलर से मिले । हिटलर सुभाष के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसन इन्हें ''भारत के डिप्टी फ्यूहरर'' की उपाधि दे डाली । सहायतास्वरूप आपको एक हवाई जहाज और रेडियो ट्रांसमीटर भी दिया जिससे सुभाष अपना संदेश प्रसारित कर सके । वहाँ से वह एक सबमैरीन के द्वारा सिंगापुर व जापान पहुँचे ।

जापान में उन दिनों क्रांतिकारी रासबिहारी बोस रह रहे थे और अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन कर रहे थे । उन्होंने वहाँ 'आज़ाद हिन्द फौज' की स्थापना की । सुभाष के जापान पहुँचने पर उसका नियंत्रण उन्हें सौंप दिया । सुभाष ने उसे बहुत ही अच्छे और व्यापक रूप से संगठित किया इसके साथ ही नेताजी के नेतृत्व में 'आज़ाद हिन्द सरकार' की स्थापना भी कर दी गई । लगभग दस देशों ने इस सरकार को मान्यता दे दी ।

23.10.1943 को इस अन्तरिम सरकार के मंत्रिमंडल की बैठक में ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का फैसला किया । स्वयं सुभाष ने इस फैसले की घोषणा रेडियो से प्रसारित की । इस निर्णय के बाद आज़ाद हिन्द फौज ने भारत को आज़ाद कराने के लिए प्रयास किया । नेताजी ने सैनिकों का आह्वान किया ।

तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा ।

इसके साथ ही नेता जी के ''दिल्ली चलो'' इस वीरतापूर्ण उद्घोष के साथ सैनिक पूर्वी सीमान्त प्रांत पर पहुँच गये। 1944 ई. में जब जापान का रंगून (बर्मा) पर कब्ज़ा हो गया तो आज़ाद हिन्द फौज़ का दफ़्तर भी सिंगापुर से रंगून चला गया। मार्च में यह फौज़ बर्मा की सीमा को पार कर भारत भूमि में प्रवेश कर गई और इम्फाल समेत एक बड़ा भूभाग अपने कब्ज़े में ले लिया। वहाँ तिरंगा ध्वज लहराने लगा। अनेक वर्षों बाद भारत का वह भू-भाग अंग्रेज़ों के शासन से आज़ाद हुआ था। यहाँ तक कि सुभाष चन्द्र बोस ने ही 4.6.1944 ई. को महात्मा गांधी को सर्वप्रथम राष्ट्रपिता की उपाधि से विभूषित किया था।

आज़ाद हिन्द फौज़ का भाग्य जापान के साथ जुड़ा हुआ था। जब तक जापान जीतता रहा आज़ाद हिन्द सेना भी आगे बढ़ती रही, जब जापान मित्र राष्ट्रों से हारने लगा तो आज़ाद हिन्द सेना को भी पीछे हटना पड़ा। 22.4.1945 ई. को जापान को रंगून छोड़ना पड़ा। उसके साथ ही आज़ाद हिन्द फौज भी पीछे हट गई। आज़ाद हिन्द सेना में 50,000 सैनिक थे। खाद्यान्न आदि की कमी के कारण अनेक सैनिक मारे गये। 1955 तक अनेक सैनिक अंग्रेज़ों की पकड़ में आ गये। यद्यपि सैनिक दृष्टि से आज़ाद हिन्द सेना असफल हो गई परन्तु उसका व्यापक प्रभाव जनता में तथा भारतीय सेना में स्वाधीनता की भावना को उत्पन्न करने के रूप में पड़ा। अंग्रेज़ सैनिक गिरफ़्तार करके भारत लाये गये। भारतीय सेना में उनकी दी गई सज़ाओं से आक्रोश फैला। अंग्रेज़ सरकार का भारतीय सेना से विश्वास उठ गया। बस, यहीं से अंग्रेज़ सरकार हताश हो चली और उसे लगने लगा कि अब तुम्हारा टिकना सम्भव नहीं है और अंग्रेज़ों ने अपना बिस्तर लपेटना शुरू कर दिया।

आज़ाद हिन्द सेना की सैनिक विफलता के बाद सुभाषचन्द्र बोस बर्मा को छोड़ कर सिंगापुर चले गये। स्वतन्त्रता आन्दोलन को नया रूप देने के लिए वे सिंगापुर से साहगोन गये। 18.8.1945 को वे कुछ जापानी अफसरों के साथ टोकियो के लिए रवाना हुए। कहा जाता है कि लगभग दो बजे फार्मसा में स्थित ताइहोक के निकट उनके हवाई जहाज में आग लग गई और

गिर पड़ा। उन्हें अधजली हालत में अस्पताल पहुँचाया गया। जापानी सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार उसी रात 8.9 के बीच नेताजी का देहान्त हो गया। नेता जी की अस्थियाँ जापान में रखी हुई हैं। चाहे कुछ भी हो उनका भारत माता को स्वतन्त्र कराने में अभूतपूर्व योगदान रहा था।

परन्तु भारत की अधिकांश जनता आज भी विभिन्न कारणें से नेताजी के देहान्त के समाचार पर विश्वास नहीं करती। उनके निधन को लेकर शाहनवाज और खोसला आयोग की रिपोर्ट अस्वीकार हुई। अब मुखर्जी आयोग जांच कर रहा है। वह डी.एन.ए. के वैज्ञानिक आधार पर नेता जी की अस्थियों की जांच कर रहा है। देखिए, उसका क्या निर्णय आता है।

25. लोहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है ।

बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर (पारखी) पैदा । । —इक़बाल

सरदार वल्लभभाई पटेल उन जननायकों में से एक थे जो भारत की जनता के हृदयों में निवास करते हैं और जिन्होंने देश की सेवा के लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया । श्री पटेल जैसे दृढ़ इच्छाशक्ति वाले नेता का ही वह चमत्कार था कि उन्होंने अंग्रेज़ों द्वारा विखण्डित किये भारत को एक सूत्र में बांध दिया । आज का अखण्ड भारत सरदार पटेल की देन है । दुर्भाग्य यह रहा कि कश्मीर पर कार्यवाही करने का अधिकार सरदार पटेल को नहीं मिला । नहीं तो आज की भयावह कश्मीर उत्पन्न ही नहीं होती । तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की राजनीतिक अदूरदर्शिता ने कश्मीर रूपी नासूर को पनपने का ऐसा मौका दे दिया कि वह न जाने कब तक भारत को संतापित करता रहेगा ।

15.8.1947 को जब अंग्रेज़ों ने भारत को आज़ाद किया तो कुटिलता की नीति प्रदर्शित करते हुए सारी रियासतों को स्वतन्त्र कर दिया ताकि अव्यवस्था फैल जाये और भारत सरकार मजबूर होकर प्रार्थना करके अंग्रेज़ सरकार को शासन संभालन के लिए यहाँ रखे । किन्तु लोहपुरुष सरदार पटेल ने, जो उस समय भारत के उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री थे उस अव्यवस्था को उत्पन्न ही नहीं होने दिया । सभी 562 रियासतों को प्रेम से समझाकर भारतें एक संघ के रूप में मिलने पर राजी कर लिया । तीन राज्य भारत में मिलने के लिए तैयार नहीं हुए—हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर । सरदार पटेल ने इन पर कठोरता का कदम बढ़ाते हुए सैनिक कार्यवाही की और इनको भारत का अविभाज्य अंग बना दिया । वर्तमान पाक अधिकृत कश्मीर भी भारत का अंग बन जाता यदि नेहरू पटेल के कार्य में दखल न देते ।

पटेल ने महान् राजनीतिक त्याग कर देश के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया । स्वतन्त्र भारत के प्रधानमंत्री का चयन करने की प्रक्रिया यह थी कि जिसके पक्ष में अधिक प्रान्तों की कांग्रेस कार्यसमितियां प्रस्ताव करके

भेजेंगी उसी को उसी को प्रधानमंत्री नियुकत किया जायेगा । बहुमत सरदार पटेल के पक्ष में आया । केन्द्रीय कांग्रेस महासमिति में महात्मा गांधी जवाहर लाल नेहरू के पक्ष में नियमविरुद्ध तरीके से अड़ गये । ऐसी स्थिति में सरदार पटेल ही ऐसे उदारपुरुष निकले जिन्होंने उदारता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्वयं अपना नाम वापस ले लिया । श्री पटेल की उदारता का ही परिणाम था कि श्री नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने । भारत की आम जनता का मानना हे कि पटेल का यह त्याग भारत के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ । इस वीर पुरुष का जन्म गुजरात प्रान्त में 31.10.1975 ई. को हुआ । उसके पिताश्री का नाम झेबर भाई पटेल था । उसके बड़े भाई विट्ठभाई पटेल थे । उसका परिवार कृषि कार्य करता था ।

सामाजिक क्षेत्र में आने के बाद उसने स्वाधीनत आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया तथा साथ ही समाजहितैषी कार्य भी किये । उसको कांग्रेस की कार्यकारिणी का मंत्री चुना गया । उसने इस समिति को पूरी निष्ठा से चलाया उस समय गुजरात प्रांत में निम्न श्रेणी के राज्य कर्मचारियें से बेगार ली जाती थी । उसने उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई । कमिश्नर ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया । फिर उसने सरकार को चेतावनी दी–

यदि सरकार ने सात दिन के अन्दर बेगार प्रथा बंद नहीं की तो मैं इसके विरुद्ध सत्याग्रह करूँगा ।

आखिर सरकार को झुकना पड़ा और वह सद्प्रयत्नों से यह निन्दनीय प्रथा बंद हो गई । इसके बाद उसने गुजरात में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की जिससे गुजरात में शिक्षा की उन्नति को बल मिला ।

उसने बारदौली में जो सत्याग्रह किया वह बहुत प्रसिद्ध हुआ । उसने सत्याग्रह के माध्यम से लगान वसूली बंद करायी । सरकार ने उसके भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । उसने सरकार के प्रतिबंध को तोड़ा जिसके कारण उसको चार मास की क़ैद काटनी पड़ी । जेल से छूटने के बाद उसने विशाल जुलूस के साथ लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई । पुलिस नहीं चाहती थी कि जुलूस निकले किन्तु वह अपने फैसले पर अडिग रहे । उसको पुनः गिरफ़्तार

कर लिया गया ।

उसके सामाजिक एवं स्वाधीनता विषयक कार्यक्रमों से जनता तथा कांग्रेस में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई । कराची में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें उसको अध्यक्ष निर्वाचित किया गया । सरदार पटेल कभी अनुचित दबाव के आगे नहीं झुके । मुस्लिम लीग अथवा जिन्ना जब कभी भी अनुचित धमकी देते तो सरदार पटेल उसका दृढ़ता से उत्तर देते थे । भारत के स्वतंत्र होने के बाद वह दिन-रात देश की सेवा एवं उन्नति के कार्यों में लगे रहते । कार्य की अधिकता के कारण उसको हृदयरोग हो गया । 15.12.1950 को 76 वर्ष की आयु में प्रभु को प्यारा हो गया । परन्तु उनका नाम आधुनिक भारत निर्माता के रूप से भारतवासी सदा स्मरण रखेंगे । वस्तुतः वह भारत माता के महान् सपूत थे । यही कारण है कि सरदार बल्लभ भाई पटेल जी की 182 मीटर ऊँची मूर्ति का भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 31.10.2018 को गुजरात में लोकार्पण किया । संसार की सबसे ऊँची मूर्ति पर 2990 करोड़ रुपये खर्च हुये और इसको Statue of unity का नाम दिया गया । यह वस्तुतः संसार का आठवाँ अजूबा है और भारत के लिय अत्यंत गौरव का विषय है ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी
17. ओ३म्
18. गायत्रीरहस्य

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक मनुस्मृति
2. वैदिक उपनिषद्वाणी
3. वैदिक दर्शनवाणी
4. वैदिक महाभारत
5. वैदिक गीता
6. अमर धर्मग्रंथ
7. अमर नीतिग्रंथ
8. पुराणपरिचय
9. ईश्वरसिद्धि
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी
11. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
12. महावीर हनुमान
13. योगिराज श्रीकृष्ण
14. आदिशंकराचार्य
15. आचार्य चाणक्य
16. दस गुरु
17. आर्यसमाज के महामानव
18. स्वामी रामतीर्थ
19. संस्कार
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. ज्ञानामृत
23. यज्ञ
24. संत
25. संतवाणी
26. आत्मकथा
27. भतृहरिशतक
28. ब्रह्मचर्य
29. गृहस्थ
30. सामान्य हिन्दी (भाग I-II) (सब कक्षाओं के लिये)
31. धर्म
32. कर्म
33. मन
34. सुखी कौन?
35. भारत के क्रांतिकारी
36. भारत के भक्त
37. **Great Thoughts**
38. **Great Indians**
39. **Great Thinkers**
40. **Great Scientists**
41. **General English (Part I to V) (For All Classes)**

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी वैब साईट **www.dpkapoorbooks.co.in** पर भी देखा जा सकता है।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. आर्यसमाज के महामानव
4. आदिशंकराचार्य
5. आचार्य चाणक्य
6. अमर नीतिग्रंथ
7. अमर धर्मग्रंथ
8. दस गुरु
9. ईश्वरसिद्धि
10. गायत्रीरहस्य
11. ज्ञानामृत
12. गीतांजलि
13. क्या आप जानते हैं ?
14. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
15. महावीर हनुमान
16. महर्षि दयानंद
17. ओ३म्
18. पुराणपरिचय
19. राष्ट्रभाषा हिन्दी
20. संस्कार
21. संत
22. संतवाणी
23. स्वामी विवेकानंद
24. स्वामी रामतीर्थ
25. शरणागति
26. शेंर-ओ-शायरी
27. सामान्य हिन्दी (भाग **I-II**) (सब कक्षाओं के लिये)
28. वैदिकसाहित्य
29. वैदिक उपनिषद्वाणी
30. वैदिक दर्शनवाणी
31. वैदिक रामायण
32. वैदिक महाभारत
33. वैदिक गीता
34. योगिराज श्रीकृष्ण
35. यज्ञ
36. आत्मकथा
37. भर्तृहरिशतक
38. ब्रह्मचर्य
39. गृहस्थ
40. वैदिक मनुस्मृति
41. धर्म
42. कर्म
43. मन
44. सुखी कौन?
45. भारत के क्रांतिकारी
46. भारत के भक्त
47. **Great Thoughts**
48. **Great Indians**
49. **Great Thinkers**
50. **Great Scientists**
51. **General English (Part I to V) (For All Classes)**